॥ श्री- ॥

शारदा विधान मीमांसा।

—:o:—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः मनु २-२०"

जिसमें श्रुतिस्मृतियो द्वारा शारदा विधान
सनातनधर्मानुकूल प्रमाणित किया गया है।

—:o:—

लेखक तथा प्रकाशक

पं० राजमणि मिश्र वैद्य

मु० बूढ़ेनाथ महादेव

मिरजापुर सिटी

शुद्धिपत्रम्

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
प्रर्वक	प्रर्वतक	२	१०
किसा	किसी	३	१५
नग्निकाम	नग्निकाम्	४	६
दग्निर्मनह्य	दग्निर्मह्य	८	६
गन्धर्वश्व	गन्धर्वश्च	६	१२
एतु	एतुं	१२	३
प्रज्वलन	प्रज्वलनं	१२	८
प्रपश्यन्निव	प्रपपश्यन्निव	१४	७
वीर्य्य	वीर्य्यं	१४	११
मित्यमनूद्य	मित्यनूद्य	१४	११
गर्भ	गर्भं	१५	१२
सव	प्रसव	१५	१३
भघति	भवति	१५	१५
साघता	सविता	१६	१८
तात्पय	तात्पर्य	२२	६
नापिष्कुरुते	नाविष्कुरुते	२६	१०
मागीं	माँगी	३५	३
दूर्व्व	दूर्व्वं	३६	१४
पीलत्व	पत्नीत्व	३७	६
गर्भाधान्न	गर्भाधानन्न	४३	१७
दद्यत	दद्यात्	४८	१९
रजासि	रजसि	”	२०

समर्पण ।

स्वर्गीय पूज्य पिताजी श्रीमान् पं० कृष्णानन्द शर्म्मा राजवैद्यके चरण कमलोंमें सादर समर्पण ।

लेखक

ग्राम—नारी (नाड़ी) पुर
सुजानगंज—जि० जौनपुर

राजमणि मिश्र वैद्य
मु० बूढ़ेनाथ महादेव
मिरजापुर सीटी

॥ ओ३म् ॥

विषयानुक्रमणिका

धर्मशास्त्रोंमें जैसे हिंसा और अहिंसा इन दोनोंका प्रमाण मिलता है वैसे ही अल्पवयस्का अरजस्का (जो रजस्वला न हुई हो ऐसी) कन्याके तथा रजस्वला कन्याके भी बिबाहोंके प्रमाण पाये जाते हैं।

कन्येव तन्वाशा शदाना एषिदेविदेव मियक्षमाणाम्।
संस्मय मानायुवतिः पुरस्तादाविर्वक्षासि कृणुषे विभाती॥
(ऋ० मं० १ सू० १२३ अ० १८ म० १०)

अर्थात् यज्ञकार्य्य करने वालेके पास बालकन्या जाती है इसके अतिरिक्त युवती होकर कन्या पतिके पास जाती है। इस मन्त्रसे दोनों बिबाह सिद्ध होते हैं। जैसे यज्ञकार्य्यमें हिंसाका विधान शास्त्र संगत होने पर भी यज्ञातिरिक्त हिंसाविधान शास्त्र विरुद्ध समझा जाता है, वैसे ही यज्ञसाधन मात्र ही के लिये अल्पवस्का अरजस्का कन्याका बिबाह शास्त्र सम्मत होनेसे यज्ञातिरिक्त अनार्तवा कन्याका विबाह शास्त्र विरुद्ध प्रमाणित होता है।

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसःस्मृतः॥ (मनु० २-८५)

विधि यज्ञ (दर्शपौर्णमासादि यज्ञों) से जपयज्ञ दशगुण अधिक पुण्य फल दायक है। उससे सौ गुण पुण्य उस जप यज्ञमें है जिस जपको समीप वाले न सुन सकें, इससे हजार गुण पुण्य मानस जपमें है।

इस प्रमाणसे जैसे बिना हिंसाका यज्ञ * श्रेष्ठ माना जाता है वैसेही

---

* विधि यज्ञके स्वीकार करने पर भी याज्ञिक कार्य्यमें रजस्वला विवाह का निषेध नहीं हो सकता। क्योंकि ऋतुमतियोंके साथ भी यज्ञकार्य्य सुसम्पन्न होता है।

यज्ञकार्य्यके लिये भी यज्ञकर्त्ता पुरुषका रजस्वला कन्याके मिलने पर अप्राप्त रजस्का कन्याका बिवाह न करना ही श्रेष्ठ प्रमाणित होता है। क्योंकि अरजस्का तथा ऋतुस्नाता दोनों प्रकारकी स्त्रियोंके साथ यज्ञ-कार्य्य सम्पन्न होता है। सारांश यह है कि यज्ञकार्य्यके लिये यदि ऋतुमती कन्यायें न मिलती हो तो संकेत पक्ष स्वीकार करके अप्राप्त रजस्का कन्याका भी विवाह किया जा सकता है इसीलिये मनुजीने प्रथम "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" ९-९० से सब कार्योंके लिये रजस्वला होनेके तीन वर्ष बाद कन्याओंका बिबाह लिखा है।

फिर उसके बाद स्त्रीके बिना धर्मनाश होने पर संकेत पक्षमें उन्होंने १२ वर्ष या ८ वर्षकी कन्याका बिबाह भी लिखा है।

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादश वार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षाम्बा धर्मेसीदति सत्वरः ॥ (मनु० ९-९४)

अर्थात् यदि बिबाहके बिना धार्मिक कार्य नष्ट होता हो तो शीघ्र-कारी ३० या २४ वर्षका पुरुष १२ या ८ वर्षको कन्यासे बिबाह कर सकता है।

भारतमें भी लिखा गया है "द्व्यष्टवर्षोऽष्टवर्षाम्बा धर्मेसीदति सत्वरः" (निर्णयसिन्धु कन्या बिबाह प्रकरण) अर्थात् यदि स्त्रीके बिना धार्मिक कार्य नष्ट होता हो तो २८ या २४ वर्षका पुरुष ८ वर्षकी कन्यासे बिबाह कर ले। इन श्लोकोंके "धर्मेसीदति" पदसे सिद्ध होता है कि यदि धर्म नाश होता हो तो आपद्धर्ममें संकेत पक्षके लिये १२ या ८ वर्षकी कन्याका बिबाह करना चाहिये। (अन्य कई ऋषियों ने संकेत पक्ष वाले केवल याज्ञिकही विवाहको लिखा है मनुजी तथा वेदके अनुसार ही उनका भी अभिप्राय है अतएव उनके विचारसे भी ऋतुमती कन्याके विवाका निषेध नहीं हो सकता।:)

इस प्रकारसे विचार करनेसे हिंसा तथा अहिंसाकी तरह अप्राप्त रजस्का तथा ऋतुमती दोनों कन्याओंके सभी विवाह वचन चरितार्थ हो जायँगे। कोई भी ऋषि वाक्य या वेद वाक्य व्यर्थ नहीं होंगे। इन दोनों पक्षोंको यथार्थ न समझ कर बालविवाह समर्थक महात्मागण संकेत पक्षके अप्राप्त रजस्का या नग्निका विवाह पर हठ वश सनातन धर्मकी नींव डाल रहे हैं। इन दोनों पक्षोंको समझनेसे विपक्षियोंको मालूम हो जायगा कि रजस्वला विवाह शास्त्र सम्मत है। केवल नग्निका विवाहका प्रमाण माननेसे रजस्वलाओंके विवाह वचन व्यर्थ हो जायँगे। इसीसे दोनों वचन चरितार्थ होनेके लिये पूर्वोक्त मनुजीका विचार ही श्रेयस्कर होता है। इसलिये श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाणसे १५ या १६ वर्षमें कन्याओंका विवाह शास्त्र सम्मत हुआ। उसके बाद कन्याओंका स्वयम्वर-काल है, यही इस पुस्तकके प्रथमाध्यायमें लिखा गया है।

द्वितीयाध्यायमें यह सिद्ध किया गया है कि जितने ऋतुकालके प्रथमके विवाह-वचन हैं वे संकेत पक्षमें यज्ञ साधन मात्रके लिये हैं गर्भाधानके लिये नहीं हैं। क्योंकि वह गर्भाधान-काल नहीं है, गर्भाधान तो याज्ञवल्क्यानुसार रज शुद्ध होने पर और सुश्रुतोक्तानुसार १६ वें वर्षके बाद होता है।

जब स्त्रियोंमें गर्भाधानकी योग्यता हो तभी उनका विवाह करना चाहिये क्योंकि "प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः" मनुजीके अनुसार सन्तानोत्पत्तिहीके लिये विवाह किया जाता है; इसलिये विवाहके चौथे दिन गर्भाधान करनेके लिये गृह्यकारोंने लिखा है। अतः रजस्वला होनेके

बादही बिवाह होनेसे चतुर्थी कर्मके बादका गर्भाधान चरितार्थ होगा। इससे रजस्वलाही बिवाह शास्त्र सम्मत हुआ।

तृतीयाध्यायमें यह दिखलाया गया है कि यज्ञ कार्यमें बिवाहके लिये दान नहीं दी हुई कन्याओंके कारण यज्ञ कार्य नष्ट हुआ है या उसमें बिलम्ब हुआ है उसी पापसे वे कन्यायें दूषित होजाती हैं तो उन्हींके रजस्वला होने पर बिना प्रायश्चित्तके बिवाह करनेसे पाप लगता है। इसलिये प्रायश्चित्त पूर्वक उनका बिबाह होना चाहिये। तथा यज्ञ कार्यके लिये कन्यादान न देने वाले माता पिता तथा भाईभी दोषी होते हैं। इसलिये उस कन्याके बिबाहमें उन लोगोंकोभी प्राय-श्चित्त करना पड़ता है।

सभी रजस्वलाओंके बिबाहमें पाप नहीं लगता; न तो प्रायश्चित्तही करना पड़ता हैं और न उनके देखने वाले माता-पिता भाई नरकही जाते हैं। क्योंकि ऋग्वेदमें लिखा है" अमाजूरिव पित्रोः" ऋ० मं० २ सू० १७ अ० ७ अर्थात् पतिको न पाती हुई अविबाहिता-कन्या जन्म भर पिताके घरमें रहकर माता पिताको सेवा करे तथा "काममा मरण मातिष्ठेत्" मनु० ६-८९ में भी लिखा है कि योग्य वरके न मिलने पर अविबाहिता ऋतुमती कन्या जन्म भर पिताके घरमें बैठी रहें।

इससे यह मालूम होता है कि सभी अबिवाहित रजस्वलाओंके देखने वाले माता-पिता जेठा भाई नरक नहीं जाते न तो उनको भ्रूण हत्या इत्यादिका पापही लगता है और सभी रजस्वलाओंको ग्रहण करने वाले वृषली पति, अश्राद्धय तथा अपांक्तेय नहीं होते।

स्वयम्बर तथा गन्धर्व बिबाहसे भी उपरोक्तही अभिप्राय सिद्ध होता है क्योंकि ये बिबाहभी रजस्वला होनेके बाद ही होते हैं।

चतुर्थाध्यायमें यह दिखलाया गया हैं कि १६ वें बर्षके बाद गर्भ-स्थिति समय है, उस समय तक बिबाह न करनेसे भ्रूण हत्याका पाप लगता है। अपरिपक्व रजःकालमें या १२ वें वर्ष बिबाह न करनेसे भ्रूण हत्याका पाप नहीं लगता क्योंकि उस समयमें गर्भही नहीं ठहरता। और गर्भ योग्य रज रहने पर ऋतुस्नानोत्तर स्त्रीके पास न जानेसे गर्भ हत्याका पाप लगता हैं, यदि गर्भ योग्य रज न हो तो ऋतुकालमें गमन न करनेसे पाप नहीं लगता।

पंचमाध्यायमें सारडा एक्टकी आवश्यकता दिखलाई गई है तथा काननका स्वरूप और उसके लाभभी दिखलाये गये हैं।

बूढ़ेनाथ (बृद्धेश्वर) महादेव।
मिर्ज़ापुर सिटी।

प्रार्थी—
राजमणि मिश्र वैद्य

कार्तिक सुदी ८
सं० १९८६

मुद्रक—महादेवप्रसाद सेठ
बीसवीं सदी प्रिंटिङ्ग प्रेस, "मतवाला कार्यालय"
गऊघाट, मिर्जापुर-सिटी।

॥ श्रीविन्ध्यवासिन्यै नमः ॥

※ ओ३म् नमः परमात्मने सच्चिदानन्दाय ※

हेरम्बसाम्बसुत कर्णपुटेनपेयम्, सुश्रेयसेसुमनसां तवनामधेयम्।
विघ्नौघनाशन विधौसुजनैःसुगेयम्। आद्यमुत्तमधियामधियामनेयम्॥१॥

शास्त्रार्थैभ्रमयुक्तयुक्तिविदुषां सुस्वान्तसन्तोषकः।
बालोद्वाहविधानपाटवतमश्चक्षुःसमुन्मीलनः॥
पूज्य श्रीगुरुसभ्यतापरिचयप्रोद्बुद्धभावस्यमे।
ग्रन्थो राजरूणेरयं सुमनसामानन्दनं नन्दनः॥२
रसाष्टग्रहचन्द्रेऽब्दे धर्मशास्त्रप्रमाणतः।
श्रीशारदाविधानस्य मीमांसा क्रियते मया॥३

प्रथमोऽध्यायः।

आजकल जगह जगह शारदा ऐक्ट पर विचारोंकी तरंगें उठ रही हैं। हमारे धर्मके ठीकेदारोंने तो इसे अधर्म ही स्थापित करके छोड़ा है। वास्तवमें उन्हें धर्मका कुछ भी ध्यान नहीं है। हम लोगोंकी धर्म-नौका किधर जा रही है, किधर जानेसे पार लगेगी तथा किस ओर जानेसे वह डूब जायगी इसका उनको कुछ भी ध्यान नहीं है। फलतः कुविचार रूपी भ्रमरमें पड़कर भारतकी धर्मनौका डूबना

चाहती है। धर्मनौकाके कर्णधारोंको कूलका कुछ भी ज्ञान नहीं है। यद्यपि उन्हें अपने ज्ञानका अभिमान है तथापि किनारेका पता लगाना उनके लिये बहुत ही कठिन सा हो गया है। इन्हीं धार्मिक नेताओंके कारण स्वर्गोपम भारत आज दासताके बन्धनमें बँध गया है। जाति और धर्मके उपयुक्त नियमोंके न पालन करनेसे ही वह आज इतना निर्बल हो गया है कि वह सुविचार द्वारा अपना कल्याण तक नहीं कर सकता।

हमारा वैदिक सनातन-धर्म सम्भवसे परिपूर्ण और परिपक्व है। यह उदारताका भण्डार है; सभी धर्मोंका शिरोमणि है। इसके प्रर्वक महर्षि गणोंकी धार्मिक उदारता श्रुति स्मृतियोंमें प्रसिद्ध है। इस धर्ममें असम्भव नाम मात्रको भी नहीं हैं जिससे यह दूसरोंका हास्यास्पद हो। आजकलके धर्म व्यवस्थापक लोग इसमें अनुदारता, अपूर्णता, अपरिपक्वता और असम्भवका समावेश करके इस धर्मकी चारो ओर हँसी करा रहे हैं। जो सर्वग्राह्य, सर्वश्रेष्ठ बातें श्रुति-स्मृतियोंमें लिखी हुई हैं, उनके महत्वको छिपाकर परस्पर-विरुद्ध निर्बल वाक्योंसे वे धर्मका गौरव नष्ट कर रहे हैं। इस वैज्ञानिक युगमें भी अन्य धर्मावलम्बी अब भी इस धर्मके गौरव और इसकी व्यापकताको देखकर स्तम्भित और चकित हो जाते हैं। तब भी हमारे पण्डितोंकी मोह-निद्रा भंग नहीं हो रही है। इसी हेतु शास्त्र-निषिद्ध बाल-विवाह के समर्थनमें वे जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं।

वेद और मनुस्मृति आदि धर्म-शास्त्रोंमें १५ या १६ वर्षकी कन्या तथा २० या २५ वर्षके युवकका विवाह लिखा हुआ है :—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वन्तुकालादेतस्माद् विन्देत सदृशम्पतिम् ॥

(मनुस्मृति-९-९०)

अर्थात्—रजस्वला होनेके ३ वर्ष बाद तक कुमारी कन्या अपने पितृकृत विवाहकी (प्रतीक्षा करे) आशा देखे। उसके बाद कुमारी स्वयम् सदृश वरके साथ स्वयम्बर कर ले।

इससे यह सिद्ध है कि, रजस्वला होनेके तीन वर्ष बाद (१५ या १६ वर्ष) तक कन्याका पिता सदृश वरके साथ कन्याका विवाह कर सकता है। यदि किसी प्रकारसे उस समय तक पिता विवाह न कर सके तो उसके बाद कन्या स्वयम्बर कर ले। निर्णय-सिन्धुकारने भी कन्या रजो दर्शन प्रकरणमें लिखा है:—

"त्रीणिवर्षाण्यृतुमती काँक्षेत पितृशासनम्।"
"ततश्चतुर्थेवर्षेतु विन्देत सदृशम्पतिम्"

(इति पाराशर माधवीये बौधायनोक्तेश्च)

अर्थात्—कन्या रजस्वला होनेके बाद ३ वर्षतक "पितृ शासनम्" पितृकृत विवाहकी प्रतीक्षा करे इससे भी यही सिद्ध होता है कि, रजस्वला होनेके ३ वर्ष बाद पिता कन्याका विवाह कर दे। यदि किसी तरह तब तक कन्याका पिता उसका विवाह न कर सके तो ऋतुकालके बाद चौथे वर्षमें कन्या सदृश पतिके साथ स्वयम्बर कर ले।

"ऋतु त्रयमुपास्यैव कन्या कुर्यात् स्वयम्बरम्।"

इस विष्णु वचनका भी पूर्वोक्त प्रकरणानुसार यही अर्थ है कि, "ऋतु वर्ष त्रय मुपास्यैव कन्या स्वयम्बरं कुर्य्यात्" अर्थात् ३ वर्ष ऋतु-काल देखकर तब कन्या स्वयम्बर करे। इससे भी रजोधर्मके ३ वर्ष बाद

विवाह करना सिद्ध होता है। यहां ऋतु शब्द ऋतु-वर्णका बोधक है। ऐसा करनेसे ही पूर्वोक्तार्थोंसे इसकी समानता होगी। निर्णय सिन्धुकारने उसी प्रकरणमें और भी लिखा है :—

"त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्यां विन्देत नग्निकाम्।"

"दश वर्षोष्ट वर्षाम्वा धर्मेसीदति सत्वरः।"

(भारत)

अर्थात् ३० वर्षका पुरुष १६ वर्षकी कन्यासे विवाह करे। यहां "नग्निकाम्" सोलह वर्षकी कन्याका विशेषण नहीं हो सकता, क्योंकि १६ वर्षकी कन्यायें नग्निका (विना रजस्वला) नहीं मिलतीं। इसलिये "नग्निकाम" यह उत्तरार्द्ध का विशेषण है। हाँ, याज्ञिक-विवाहके समय ऋतुमतीके न मिलने पर संकेत पक्षमें नग्निकाका विवाह उचित माना जा सकता है*। अनग्निका (रजस्वला) कन्याका विवाहहो सर्व श्रेष्ठ है यह गोभिल गृह्य सूत्रके "अनग्निकातु श्रेष्ठा" ३ प्रपाठक ४ खं० ६ सूत्र से भी सिद्ध होता है।

"गृह्य संग्रह" में लिखा है कि,—

"नग्निकांतु वदेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्।"

"ऋतुमती त्वनग्निका तां प्रयच्छेत्वनग्निकाम् १७
अप्राप्ता रजसा गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी।
अव्यञ्जिता भवेत्कन्या कुचहीनातु नग्निका॥ १८
व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम्।
पयोधरैस्तु गन्धर्वो रजसाग्निः प्रकीर्तितः॥१९
तस्माद्व्यञ्जनोपेता-अरजा अपयोधरा।
अभुक्ता चैव सोमाद्यैः कन्यका न प्रशस्यते॥२०

(गो-गृह्य संग्रह अध्याय २)

---

* इसका विवेचन दूसरे अध्यायमें किया गया है।

अर्थात् जबतक कन्याको मासिक धर्म न हो तबतक उसे नग्निका कहते हैं, और रजस्वला (ऋतुमती) होनेपर कन्याको अनग्निका कहते हैं। उसी ऋतुमती अनग्निका कन्याका दान देना चाहिये।

जो कन्या रजस्वला न हुई हो उसे गौरी कहते हैं और रजस्वला होने पर कन्या रोहिणी * कही जाती है। जिस कन्याको स्त्रीके लक्षण न प्राप्त हुए हों उसे कन्या कहते हैं। जिसके—स्तन न हो वह कन्या नग्निका कही जाती है

---

* नोट—वैकुण्ठं 'रोहिणीं ददत्' जो रोहिणी (रजस्वला) का दान देता है उसको वैकुण्ठ लोक मिलता है। कुछ लोगोंका कहना है, रजस्वला होनेके बाद की रोहिणी संज्ञा नहीं है बल्कि जब कन्याओंको अप्रकट रजोधर्म होता है तभी उनको रोहिणी या रजस्वला कहना चाहिये। इसीलिये सुश्रुतमें लिखा है कि, "अदृष्टार्तवाप्यस्तीत्येकेभाषन्ते" अर्थात्।—कन्यायें अदृष्टार्तवा हो कर तब दृष्टार्तवा होती हैं, इसलिये अदृष्टार्तवा अन्तः रजस्वला का नाम रोहिणी तथा रजस्वला है। अतः रजस्वला या रोहिणी का विवाह जो शास्त्रों में कहा गया है वह अदृष्टार्तवा (अन्तः रजस्वलाओं) के विवाह के लिये कहा गया है। यह उन लोगों का कथन एक मात्र सुश्रुत विरुद्ध होने से माननीय नहीं है। सुश्रुत वाक्य का यह अर्थ नहीं है कि, सभी स्त्रियां अदृष्टार्तवा होकर तब दृष्टार्तवा होती हैं। बल्कि उसका यह अर्थ है कि, बहुत सी स्त्रियां अदृष्टार्तवा भी होती है, जिनको मासिक रजोधर्म कभी नहीं होता (उन्हीं के विवाहों की शास्त्राज्ञा नहीं है।) उन्हें अन्तः रजस्वला या रोहिणी न कहना चाहिये। और विपक्षियों का

स्त्रियोंके लक्षण होनेपर कन्याओंसे सोम देवता भोग करते हैं, स्तनके हो जानेपर कन्याओंसे गन्धर्व तथा रजस्वला होने पर अग्नि देवता भोग करते हैं।

यह कहना कि, जब अन्तः-रज आ जाता है बाहर नहीं प्रकट होता तभी उनको अदृष्टार्तवा या अन्तः रजस्वला कहा जाता है, उसी समय उनकी रोहिणी संज्ञा पड़ती है और वही अन्तः रजस्वला हैं। शास्त्र में उन्हीं के विवाहों के लिये रोहिणी तथा रजस्वला विवाह कहा गया है इत्यादि उनकी ना समझी की बातें आगे के प्रमाणों के विरुद्ध होने से माननीय नहीं है, क्योंकि सुश्रुत में लिखा है कि,—

अस्तित्वतां भावानामभिव्यक्तिरिति कृत्वा केवलात्सौक्ष्म्यान्नाभिव्यज्यते एवं बालानामपि वयः—परिणामाच्छुक्रप्रादुर्भावो भवति रोम राज्या-दयोऽथार्तवादयश्चविशेषाः। (सुश्रुत सूत्र स्थान १४ अ. १२ सू.)

अर्थात जो भाव रहते हैं वही प्रकट होते हैं, इसी सिद्धान्तानुसार लड़कपन ही से स्त्री पुरुषों में रज वीर्य्य रहता है, केवल सूक्ष्म होने से ज्ञात नहीं होता। समय बीतने पर वही रज, वीर्य्य, स्तन, केशादि सभी प्रकट हो जाता हैं। इस सुश्रुत प्रमाण से जन्म से ही रज वीर्य्य शरीर के भीतर रहते हैं, तो विरोधी लोगों के मतानुसार जन्महीं से सभी कन्यायें अदृष्टार्तवा या अन्तः रजस्वला हो जायँगी और जन्महीं से सभी रोहिणी कहलायेंगी, तो गौरी संज्ञा कब और किनकी होगी? या जन्म होते ही कन्याओं के अन्तः रजस्वला होने के कारण उनका विवाह कर दिया जाय? इसलिये विरोधियोंका

अतएव जिस कन्या को स्त्री के चिन्ह न हों और जो रजस्वला न हुई हो तथा जिसके स्तन न उत्पन्न हुये हों और सोमादि देवताओं से भोगी न गई हो, वह कन्या विवाह के लिये प्रशंसनीय नहीं होती।

इससे तो यही सिद्ध हुआ कि, देवताओं के भोग के पूर्व कन्यादान सर्वथा अमान्य है। सोमादि देवताओं के भोगने के बाद (रजस्वला-होने पर) कन्याओं को मनुष्य (युवा) पति मिलना चाहिये। यही उत्तम पक्ष है। देवताओं के भोग के पूर्व कदापि विवाह न करना चाहिये। इसलिये वेद में लिखा गया है:—

सोमः प्रथमो विवदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥

(ऋग् मण्डल १० सूक्त ८५ अ. ७ मंत्र ४०)

अर्थात्।—हे कन्ये! सोम पहिले तुमको प्राप्त होता है, उसके बाद गन्धर्व, फिर अग्नि देवता प्राप्त होते हैं। मनुष्य तुमारा चौथा पति है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, तीनों देवताओं के भोग करने के बाद रजस्वला होने पर कन्याओं से मनुष्यों को विवाह करना चाहिये। इसी से मनुष्य चौथा पति कहा गया है।

मनुजी ने भी लिखा है कि,—देवदत्तां पतिर्भार्य्यां विन्दते नेच्छयात्मनः" (मनु० ९-९५)

कथन ठीक नहीं है--तथा अदृष्टार्तवा या अन्तः रज-स्वलाका नाम रोहिणी नहीं है। किन्तु प्रकटित रजस्वलाओं की रोहिणी तथा रजस्वला संज्ञा है, उन्हीं के विवाहको शास्त्राज्ञा है।

अर्थात् !—सोमादि देवताओं से दी हुई स्त्री से पति विवाह करे, अपनी इच्छा से विवाह न करे। (अर्थात् बिना देवताओं के छोड़े विवाह न करे) इसलिये वेद में फिर भी लिखा है कि, अग्नि देवता भोग करके मनुष्य को कन्या देते हैं

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये रयिञ्च
पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्।'

(ऋग्. मण्डल १० सूक्त ८५ अ. ७ मं. ४१)

अर्थात्।—सोमने भोग करके गन्धर्व को, गन्धर्वने भोग करके अग्नि को दिया तथा अग्नि भोग करके इस कन्या को तथा धन और पुत्र * मुझे दें। (ऐसा मनुष्य कहता है।)

अत्रि स्मृति में भी लिखा है कि,—

"पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोम गन्धर्व वन्हिभिः।
भुंज्यन्ते मानुषैः पश्चान्नता दुष्यन्ति कर्हिचित्॥"

अर्थात्।---प्रथम स्त्रियों से सोम, गन्धर्व तथा अग्नि भोग करते हैं, जिससे स्त्रियां कभी दूषित नहीं होतीं फिर इसके बाद मनुष्यों को भोग करना चाहिये।

पूर्वोक्त बचनानुसार कन्याओं के स्त्रियों के लक्षण (रोम इत्यादि) उत्पन्न होने पर सोम, स्तनों के होने पर गन्धर्व तथा रजस्वला होने पर दो वर्ष अग्नि भोग करते हैं, उसके बाद चौथी बार "तुरीयस्ते-मनुष्यजाः" के अनुसार कन्या का विवाह करके मनुष्यों को पति

---

* नोट—सो जब पुत्र पैदा करनेकी योग्यता कन्याओंमें हो जाय तब मनुष्य अग्निसे कन्या ले अर्थात् विवाह करे।

होने का अधिकार वेद तथा शास्त्रों से सिद्ध होता है, तभी कन्याओं का विवाह होना चाहिये। इसलिये 'अनग्निकातुश्रेष्ठा" गोभिल गृह्य सूत्र तथा वेद एवं धर्म शास्त्रों के वचनों से 'अनग्निका" रजस्वला विवाह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। तथा "अभुक्ताचैव सोमाद्यैः कन्यका-तु प्रशस्यते" के पाठ से देवताओं के भोग के प्रथम कन्या की प्रशंसा विवाह के लिये की जाती है सो पाठ वेद, मनु तथा अत्रिके विरुद्ध होने से माननीय नहीं है। क्यों कि "तुरीयस्ते मनुष्यजाः" से देवताओं के भोग के बादही मनुष्यों को पति होने की आज्ञा दी गई है। इस-लिये देवताओं के भोग के प्रथम कन्याओं की विवाह के लिए प्रशंसा करना उचित नहीं है। ज्योतिर्निबंध में भी लिखा है कि—

> "षडब्द मध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्ष द्वयं यतः।
> सोमो भुंक्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च तथा नलः॥"

अर्थात्—६ वर्षके प्रथम कन्याओंका विवाह न होना चाहिये। क्योंकि उसके प्रथम दो दो वर्षतक सोम गन्धर्व तथा अग्नि भोग करते हैं। इस मतानुसार ६ वर्षके पहिले ही देवताओंका भोग हो जाता है तो कब विवाह समय बचा जिसके लिये देवताओंके भोगके प्रथम कन्याओंकी विवाहार्थ प्रशंसा की जाती है ?

इससे भी यही सिद्ध होता है कि "कन्यका तु प्रशस्यते"का पाठ ठीक नहीं है। "अभुक्ता चैव सोमाद्यैः कन्यका न प्रशस्यते" ही का पाठ ठीक है, अर्थात् सोमादि देवताओंके भोगके प्रथम कन्यायें विवाहार्थ प्रशंसनीय नहीं होतीं। इसलिये उनका विवाह न करना चाहिये। किन्तु देवताओंके भोग करनेके उपरान्त रजस्वला होने पर कन्याओंका विवाह उत्तम समझा जाता है।

मनुजीने साफ लिखा है कि,—"देवदत्तां पतिर्भार्य्यां विन्दते नेच्छ-आत्मनः।" मनु ९-९५

अर्थात्।—देवताओंसे दी हुई स्त्रीके साथ ही विवाह करनेका अधिकार है। इसलिये उन देवताओंके भोग करनेके बाद ही रजो धर्मके प्राप्त होने पर विवाह करना सिद्ध हुआ।

ज्योतिर्निबन्ध तथा गो०-गृह्यसंग्रहके बचनोंकी अव्यर्थताके लिये लोग दो बार देवताओंका भोग मानते हैं। एक बार कन्याओंके उत्पन्न होतेही दूसरी बार जबसे उनमें स्त्रियोंके चिन्ह (रोम) इत्यादिक आने लगते हैं, तबसे और रजस्वला होनेके दो वर्ष बाद तक देवता भोग करते हैं। यदि दो बार भोग न माना जाय तो "गृह्यसंग्रह" के अनुसार "ज्योतिर्निबन्ध" के वचन अप्रमाणिक हो जायँगे। इसलिये मनुष्योंके भोगके पूर्व ही "गृह्यसंग्रह" तथा "ज्योतिर्निबन्ध" बचनानुसार देव भोग हो जाना चाहिये। इसके बाद ही मनुष्योंको पति होनेका अधिकार प्राप्त होगा। कुछ लोगोंका कहना है कि, ऋतुकाल के पहिले विवाह हो जाय और उसके बाद देवता लोगोंका भोग हो जाने पर मनुष्योंके भोग करनेसे सभी वाक्य चरितार्थ हो जायंगे। यह उन लोगोंका कथन बिल्कुल वेद विरुद्ध है क्योंकि वेदमें लिखा है कि, "पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः" अर्थात् मनुष्य कन्याका चौथा पति होता है। यदि पहिले विवाह हो जाय और पीछे देवता लोग भोग करें तो मनुष्य पहिला पति होगा। किन्तु वेदसे तो उसको चतुर्थ-पतिका अधिकार प्राप्त है। देवताओंके भोगके पहिले तो विवाह

ही न करना चाहिये फिर विवाहके बाद देव-भोग कैसे हो सकता है?

गृह्यसंग्रहानुसार रजस्वला होने पर अग्नि का भोग होता है, उसके बाद ऋग्वेदानुसार अग्निसे कन्या मिलने पर मनुष्योंको पति होनेका अधिकार मिलता है। इसीलिये "अनग्निकातु श्रेष्ठा" का पाठ बदलना गृह्यसंग्रह तथा वेद विरुद्ध होनेसे ठीक नहीं है। गृह्य संग्रहके "तांप्रयच्छेत्वनग्निकाम्" से भी अनग्निका रजस्वलाका विवाह सिद्ध होता है। इसलिये "अनग्निकातु श्रेष्ठा" यही पाठ युक्त है। जैमिनि गृह्य सूत्रमें भी लिखा है कि—

"ताभ्यांमनुज्ञातो जायां बिन्देतानग्निकाम्"

(२०-५-६)

अर्थात्—माता पिताकी आज्ञा लेकर अनग्निका (रजस्वला) कन्यासे विवाह करे तो इससे भी अनग्निका विवाह उत्तम सिद्ध हुआ। अब तो अनग्निकाके पाठ *में कोई सन्देह नहीं है। अतः रजस्वला ही कन्याका विवाह होना सर्व श्रेष्ठ ठहरा। रजस्वला होने पर विवाहके लिये ऋग्वेदका भी प्रमाण है।

---

* नोट—"काममारणा मातिष्ठेत्" म-९-८९ के टीकामें मेधातिथिने लिखा है कि "प्रागृतोः कन्यायाः न दानम् ऋतावपि यावद्गुणवान् वरो न लभ्यते" अर्थात् ऋतुकालके पहिले कन्यादान न होना चाहिए रजस्वला होनेके बाद भी जबतक गुणवान् वर न मिले तबतक कन्यादान न हो। इसका भी यही सारांश है कि रजस्वला होनेके पहिले विवाह न होना चाहिए

कन्या इव वहतु मेत वाउ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते"॥

(ऋग्वेद मण्डल ४ सू० ५८ अध्याय ५ मंत्र ६)

"कन्या इव अनूढ़ा बालिका यथा वहतुं उद्वाहं प्राप्तुं एतवे एतु पतिं गन्तुं अंजि अञ्जकमाभरणंतेजो वा अञ्जाना व्यञ्जयन्त्यः एवं कुर्वन्त्यः कन्या इव स्वभर्तृभूतं अध्वरं वैद्युतं वाग्नि मादित्यंवहतु मेतुं अञ्जि व्यञ्जकं वा तदीयं रूपं अञ्जाना व्यञ्जयन्त्या तादृशी घृतस्य धारा अभिचाकशीम्यभिपश्यामि घृतेनोदके न च भौमस्य वैद्युतस्य वाग्नेः प्रज्वलन प्रसिद्धम्। किञ्च ता धारा यत्र सोमः सूयते यत् चेतरो यज्ञस्तायते तत्तं यज्ञ मभिलक्ष्य पवन्ते उपगच्छन्ति खलु।"

(इति सायण भाष्यम्।)

इस मंत्रमें घृतको धाराकी अविवाहिता कन्यासे उपमा दी गई है और पतिकी उपमा यज्ञसे दी गई है। जैसे बिना विवाही कन्या अपना विवाह करनेके लिये (पतिके पास जानेके लिये) अपने तेज और आभूषणोंको प्रकाशित करती है वैसे ही घृतकी धारा भी अपने पति रूपी यज्ञ या बिजली तथा सूर्यके पास जानेके लिये उनके रूपको प्रकट करती हुई दिखलाई देती है। क्योंकि घीसे अग्नि तथा जलसे बिजली या अग्निका जलना प्रसिद्ध है। (इन बातोंसे ज्ञात होता है कि, अग्नि जलसे बिजली पैदा करनेके उपाय वेदोंमें भली भांति कहे गये हैं। जल, बिजली, बादल, वायु इत्यादि पदार्थोंको पूर्ण करनेके लिये तथा स्वर्गादि प्राप्तिके लिये ही यज्ञ किये जाते थे।) इसलिये यह घृतकी धारा यज्ञके पास जाती है।

इस वेद मंत्रमें यह कहा गया है कि, विवाह करनेके लिये कन्या अपने तेज तथा आभूषणोंको धारण करती है, तो जब कन्याओंमें तेज आ जाय तब उनका विवाह करना चाहिये, और इस बातको सब लोग जानते हैं कि, रजस्वला होनेके बाद ही कन्याओंमें तेज (सुन्दरता या प्रकाश) आता है। इसलिये रजस्वला होने ही पर कन्याओंका विवाह होना वेद संगत है यही वेदकी आज्ञा है।

जैमिनिजी तथा आपस्तम्बने भी लिखा है कि,—"त्रिरात्र मक्षार लवणाशिनौ ब्रह्मचारिणावधः संवेशिनौ असंवर्तमानौ सहशयाताम् (२०-६) तथा "ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्सम्भवः" (जै० गृ० २०-७,८ गो० गृ० ७ सू० २, ५)

अर्थात् खारे तथा नमकीन पदार्थोंका सेवन छोड़कर विवाहके तीन रात्रि बाद तक स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य्य पूर्वक साथमें नीचे सोवे, यदि स्त्री रजस्वला न हो तो तीन रात्रिके बाद पुरुषको गर्भाधान करना चाहिए। यदि उस समय स्त्री रजस्वला हो तो ऋतुस्नानोत्तर गर्भाधान करना चाहिये। जैमिनिजी तथा आपस्तम्बजीके उपरोक्त सूत्र विवाह प्रकरणके हैं।

विवाहके चौथे दिन गर्भाधानके इस विधिसे सिद्ध होता है कि, कन्याकी गर्भाधान योग्य अवस्था होने पर विवाह होना चाहिए, जिससे जैमिनिजी तथा आपस्तम्बजीके अनुसार विवाहके चौथे दिन गर्भाधान हो सके। इसलिए पूर्णयुवती होने पर कन्याका विवाह होना चाहिए

और भी पारस्कर गृ०२१-८,१ चतुर्थी-कर्मके बाद ही गर्भाधानका

प्रमाण मिलता है। इन बातोंसे मालूम होता है कि, रजस्वला होनेके बाद गर्भाधानकी योग्यता होने पर कन्याओंका विवाह होना चाहिए, जिससे विवाहके चौथे या पांचवें दिन गर्भाधान हो सके।

तैत्तरीय ब्राह्मणमें भी लिखा है कि, संभोगके योग्य युवती (जवान) कन्याओंका विवाह होना चाहिये।

साकूतिमिन्द्र सच्युतिं सच्युतिं जघनच्युतिम्।
कनात् काभां न आभर प्रपश्यन्निव सक्थौ॥

(तैत्तरीय ब्राह्मण। काण्ड २ प्रपा० ४ अध्याय ६)

हे इन्द्र! कनात् काभां कनकवद्भासमानां रूपवतीं कन्यां नोऽस्मदर्थमा भरआनय। को दृशीं कूतिः आकूतिः सङ्कल्पः तेन सहिताम्। अस्मास्वनुरक्ता मित्यर्थः "सच्युतिम्" च्युतिः क्षरणम् वीर्य्यस्पन्दनं तेन सहिताम्। अनुरागाति शयेनहि सहसा वीर्य्य स्पन्दति। एतदेव सच्युतिमित्यम् नूद्य॥ जघनच्युति मित्य-नेन व्याख्यायते। आहरणे दृष्टान्तः सक्थौ प्रपश्यन्निव। यथात्यन्तंकामुकः उरुद्वयम्प्रतियब्धुमुत्सुकः अत्यन्त सादरेण स्त्रियमाहरति तद्वत्॥

अग्रिम मन्त्र भाष्ये लिखितं यदेतच्च मन्त्रद्वयं कन्या लाभार्थं कर्मणि— विनियोज्यम्॥ (इति सायण भाष्यम्)

अर्थात्।— हे इन्द्र! अत्यन्त कामी पुरुष अधिक आदरसे जैसी स्त्रीको ले आता है, वैसी ही सोनेके वर्णकी भांति रूपवती तथा अत्यन्त प्रेमसे वीर्य दान देने वाली और मुझमें प्रेम रखने वाली कन्याको मुझे दीजिये।

ये दोनों मन्त्र कन्याकी योग्यताके लिए कहे गये हैं। अर्थात् पुरुष कहता है कि, हे इन्द्र! ऐसी स्त्री मुझे (विवाहमें) दो।

यह विवाहका विषय है, सायणाचार्य्यने इसीलिए कहा है कि, ये दोनों मन्त्र कन्या मिलनेके लिए कहे गये हैं, क्योंकि विवाह ही के लिये लोग कन्याको चाहते हैं। रजस्वला होनेके बाद ही कन्याओंमें प्रेमातिशयसे वीर्य्य दान देनेकी योग्यता (शक्ति) होती है। तभी उनका विवाह करना चाहिए। क्योंकि स्त्रियोंके लक्षणोंकी सब परीक्षायें बिबाहके पहिले ही होती हैं।

युवती कन्याके विवाह पर यास्क मुनिका मत ।:—

न जामये तान्वोरिक्थ मारैक् चकार गर्भं सनितुर्निधानम्।
यदि मातरो जनयन्त वन्हि मन्यः कर्ता सुकृतो रन्य रिन्धन्॥

(यास्क निरुक्त० ३-६-१)

न जामये इति-न जामये भगिन्ये तान्वः आत्मजः। स च किं करोतीति "रिक्थमारैक्" रिक्थं पैतृकं धनं न प्रादात् इति। किं तर्हि तस्याः करोति इति उच्यते चकार गर्भं सनितुर्निधानम्। सनितुर्हस्तग्राहस्य भगिनी भर्तुः सव समर्थां करोति पुष्णातीत्यर्थः। किं च यदि मातरः यत् पुत्रद्धय मिह मातरो जनयन्ति वन्हिं च वध्वा वोढारं पुत्रं "अवन्हिंच" आबोढ्रीं स्त्रियम्च तयोर्द्वयोरपि एकतरः कर्ता सन्तान कर्ता भवति कतमः यः पुमान् स एव च दायादः दायादार्हः नेतरः कन्याख्यः किं च एकेनापि प्रयत्नेन कृतयोरुत्पादितयोः (तयोः) अन्य रिन्धन् अन्यतरोर्धयित्वा सुकृतोऽपि सुपुष्टोऽपि सन् जामिः ❀ जामाख्यो भगिन्याख्यः प्रदीयते परस्मै। इति न दुहितरो रिक्थ भागिन्यो भवन्ति वर्धयित्वा ह्येता परस्मै दीयन्ते।

यास्क निरुक्त नैघण्टुक काण्ड निघण्टु (२-२) २ अप० १ दुहितृदायादम् अ० ३ खं० ६। (इति दुर्गाचार्य्य भाष्यम्।)

❀ नोट३—५७ तथा ३-५८ के मनुस्मृतिके टीकामें कुल्लूक भट्टने जामिः का अर्थ भगिनी तथा कन्या दोनों लिखा है।

भावार्थ लड़का (भाई) बहिनको हिस्सा नहीं देता किन्तु गर्भ धारण करने योग्य उसको पुष्ट बना देता है। यद्यपि मातायें पुत्र तथा कन्या दोनों ही को उत्पन्न करती हैं, तथापि पुत्र अपने पिताका बंश चलाता है, इसलिए पुत्र ही पिताकी सम्पत्तिका अधिकारी है कन्या नहीं। यद्यपि एक ही उपायसे पुत्र तथा कन्या दोनों उत्पन्न किये जाते हैं, तब भी—(कन्याख्यः जामिः) कन्या योग्य और पुष्ट बनाकर दूसरेको दी जाती है।

इसका यही अभिप्राय है कि, जब कन्यायें बढ़कर गर्भ ग्रहण करने योग्य पुष्ट हो जायँ तब उन्हें दूसरेको देना चाहिये। अर्थात् तब उनका विवाह करना चाहिये।

"सुपुष्टोऽपिसन् परस्मै दीयते" से सूचित होता है कि, कन्याओं-के पुष्ट होने तथा बढ़ने पर पिताको उनका दान करना चाहिये। क्योंकि बढ़ना पुष्ट होना या गर्भ ग्रहण योग्य होना कन्याओंके रजस्वला होनेके बाद ही पाया जाता है। इसलिये रजस्वलाके बाद ही विवाह करना निरुक्तसे भी सिद्ध हुआ।

ऋग्वेदका मत

"सूर्य्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसासविता ददात्।"

(ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ८५ अध्याय ७ मंत्र ९)

यत् यदा सूर्य्यां पत्ये शंसन्तीं पतिं कामय मानां पर्य्याप्तयौवनामित्यर्थः मनसा सहिताय सोमाय वराय सविता तत्पिता अददात् दीत्सांचकार। ❀

(इति सायण भाष्यम्।)

❀ अलङ्कारिका आख्यायिका होनेसे सूर्य्यां पत्येशंसन्तीं पूर्णायुवती कन्याका तथा सविता कन्याके पिताका एवं सोम वरका नाम है। अतएव सब कन्याओंके युवती होनेही पर विवाह करनेके लिए वेदाज्ञा है।

अर्थात् जब कन्या पतिकी इच्छा करने वाली पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त हो, तब पिता उसको श्रेष्ठ वरको देनेकी इच्छा करता है। इस वेद मंत्रमें भी पूर्ण यौवनावस्थाको प्राप्त कन्याका विवाह कहा गया है।

कुछ लोगोंका यह मत है कि यह वेद-मंत्र देव विवाहके लिये कहा गया है परन्तु यह उनका भ्रम है। क्योंकि धर्मशास्त्रोंमें देवताओंके विवाहकी पृथक् कोई विधि नहीं है।
देवताओंके कार्य्यों को करनेका मनुष्योंको भी अधिकार है।

मनुजीने मनुष्यके आठ विवाहोंमें देव-विवाहको भी लिखा है "ब्राह्मोदैवस्तथैवार्षः" (मनु० ३-२१) इस दैव-विवाहको करनेका अधिकार मनुष्योंको भी है।

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसागीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां सते भागो जनुषा तस्यविद्धि॥

ऋ० मं १० सू० १८५ अ० ७ मं २२)

आभिर्नृणां विवाहः स्तूयते हे विश्वावसो! अतः स्थानात् कन्या समीपात् उदीर्ष्व उत्तिष्ठ एषा कन्या पतिवती हि संजाता अतः उदीर्ष्वेति वा अतः शब्दोयोज्यः विश्वावसुं एतन्नामानं गन्धर्वं नमसा नमस्कारेण गीर्भिः स्तुतिभिश्च ईळे स्तौमि। तर्हि एनां विहाय कां स्वीकरोमि यदि ब्रूषे तर्हि अन्यां पितृषदं पितृकुले स्थितां व्यक्तां अनूढेति परिस्फुटां विगताञ्जनाम्वा स्तनोद्गमाविस्तेनाप्रौढा मित्यर्थः। एतादृशः पदार्थस्ते तव भागः कल्पितः तस्य तं भागं विद्धि जानीहि जनुषा जन्मना लभस्वेत्यर्थः॥ इति सायण भाष्यम्।

"हे विश्वावसो गंधर्व ! मैं नमस्कार करके आपकी स्तुति करता हूं कि आप इस कन्याके पाससे उठ जाइये, क्योंकि अब इसका विवाह हो चुआ है। जो स्तन इत्यादिसे पूर्ण युवती न हुई हो और अविवाहिता अपने पिताके घरमें हो उस कन्याके पास आप जाइये। क्योंकि वही तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।" इस मंत्रमें विवाहित कन्याके पाससे जो गन्धर्वको उठनेके लिए कहा गया है वह सर्व देवताओंके लिये है। गन्धर्वका अर्थ है सूर्य और यह अग्निदेवका भो उपलक्षण है, क्योंकि विवाहके बाद कोई देवता स्त्रीके पास नहीं रहते। इस मंत्रसे विवाहित कन्याके पाससे हटाकर ,स्तन उठने वाली अविवाहिता कन्याके पास गन्धर्वको भेजा जाता है, इसलिये स्तन उठते ही कन्याका विवाह हो—यह कथन ठीक नहीं है। स्तन उठने पर तो गन्धर्वका भोग ही होता है, इसलिये इस मंत्रसे स्तन उठने वाली अविवाहिता कन्याके पास गन्धर्वको भेजा गया है। गन्धर्व ही के भोगके बाद विवाह न होना चाहिये नहीं तो पूर्वोक्त "अग्निर्मह्यमथो इमाम्" (पे०पृ०६) वेदमंत्रसे विरोध पड़ जायगा। इसलिये पूर्वोक्त "सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये" के अनुसार गन्धर्व अग्निको देता है और अग्निसे मनुष्यको कन्या मिलनी चाहिये। इसी विरोध परिहारके लिये गन्धर्व अग्निकाभी उपलक्षण होगा। अर्थात् गन्धर्वादि देवता विवाहित कन्याके पाससे हटकर स्तन उठने वाली अविवाहित कन्याके पास जायं। "अन्यामिच्छप्रफर्व्यम्" (ऋ० मं० १० सू० १५ अ० ७ मं० २२) "अन्यां बृहन्नितम्बां कन्यामिच्छ"—सायण। "हे गन्धर्व ! बड़ी नितम्ब

वाली कन्याके पास जाओ।" अर्थात् स्तन तथा बड़ा नितम्ब होने पर गन्धर्व भोग करके अग्निको देता है।

अतः स्तन उठने वाली कन्याके पास गन्धर्वको भेजा जाता है। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि स्तन उठतेही विवाह कर दिया जाय, क्योंकि गन्धर्व भोगके बाद रजस्वला होनेपर दो वर्ष अग्निका भोग रहता है (पे० पृ० ७)

खैर, यह तो हुए वैदिक कालके प्रमाण अब जरा पुराणकालमें भी युवती कन्याओंके विवाहका प्रमाण सुनिये :—

"यौवनस्थां तु तां दृष्ट्वा स्वां सुतां देव रूपिणीम्।
अयाच्यमानां च वरैर्नृपति दुःखितोऽभवत् ॥"

महाभारत-वनपर्व-अध्याय २६३ श्लोक ३१)

अर्थात् दिव्य रूप वाली अपनी युवती कन्या सावित्रीको वरोंसे अयाचित देखकर राजा अश्वपतिके मनमें बड़ा दुःख हुआ तथाः—

यौवनस्थामपि च तां शीलाचार समन्विताम्।
न वव्रे पुरुषः कश्चिद्भयात्तस्य महात्मनः॥"

(श्रीमद्भागवत्, दशमस्कन्द-उत्तराध श्लोक ५०)

अर्थात् शीलाचार युक्त लोपामुद्रा कन्याके युवती होनेपर पिताके भयसे उससे विवाह कोई नहीं करता था। (याने उस ऋषीके भयसे विवाह करनेके लिये लोपामुद्राको कोई नहीं माँगता था।)

उपरोक्त सावित्री तथा लोपामुद्राकी कथाओंसे ज्ञात होता है कि, युवती कन्याओंका ही विवाह होना उचित तथा श्रेष्ठ है। तथा विवाहाधिकार बीत जाने पर पिताके सामने भी स्वयम्वर होता था और विवाहके लिये वर लोग कन्याओंको उनके पितासे माँगते थे।

वेद तथा पुराणोंके साथ ही स्मृतिकारोंको भी रजस्वला होनेके बाद ही विवाह होना अभीष्ट है। महर्षि याज्ञवल्क्यजीने लिखा है।—

अविप्लुत ब्रह्मचर्य्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्य पूर्विकां कान्तामसपिंडां यवीयसीम्॥ ५२
एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः।
यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जन प्रियः॥ ५३"

(याज्ञ-स्मृ-आचाराध्यायः)

अर्थात् जिसका ब्रह्मचर्य्य स्खलित न हुआ हो (पूर्ण ब्रह्मचारी हो), स्वजातीय विद्वान् बुद्धिमान् मनुष्योंको प्रिय हो, यत्नसे परीक्षा करने पर जा पुरुष ठहरे (नपुंसक न हो) ऐसा युवा पुरुष अच्छे लक्षण वाली (मनूक्त दश कुलक्षणोंसे रहित) जिसके पूर्व पति न हो, जो माताके सपिंड की न हो तथा जो स्वगोत्र की न हो, ऐसी (यवीयसीम्) युवती कन्यासे विवाह करे। ५० मिताक्षरा में भी लिखा है कि,—

"स्त्रियं नपुंसकत्व निवृत्तये स्त्रीत्वेन परीक्षिताम्।"

यत्नसे परीक्षा करनेपर जिसमें स्त्री धर्म ठीक ठहरे उसी स्त्रीसे विवाह करना चाहिये और जिसमें नपुंसक धर्म ठहरे (क्योंकि स्त्रियोंमें भी नपुंसक स्त्रियाँ होती हैं। अर्थात् उनका मासिक धर्म इत्यादि ठीक नहीं होता।) उससे विवाह न करना चाहिये। और इसका पता रजस्वला होनेके बादही लग सकता है। इससे रजस्वला होनेके बाद विवाह करना सिद्ध हुआ। * मिताक्षराकारने और भी लिखा है

---

* नोट।—"अतो प्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात्पिता सकृत्" इससे रज प्रवृत्त होनेपर पिता कन्या दान दे। इससे भी सिद्ध होता है कि, रजस्वला होनेके बाद पिता कन्याका विवाह करे। निर्णय सिंधोः कन्या विवाह काले भारत वचनम्)

"यवीयसीं वयसा प्रमाणतश्च न्यूनाम्।" अर्थात्।—अवस्था और प्रमाण(बड़ाई) में कन्या पुरुषसे छोटी हो, परन्तु (यवीयसीम्) जवान हो।× क्योंकि व्याकरणके रीत्यनुसार युवन् शब्दसे "द्विवचन" इत्यादि तद्धित (५-३-५७) के सूत्रसे "इय सुन्" प्रत्यय होता है और "स्थूल दूर युव" इत्यादि ६ ४-१५४ के सूत्रसे वकारका लोप पूर्वके गुण अन्तमें "उगितश्च" ४-१-६ से ङीप् होकर "यवीयसीम्" पद सिद्ध होता है। इसकी व्युत्पत्ति हुई "इय मनयोरतिशयेन युवतीयवीयसी" अर्थात् —इन दोनों कन्यायोंमें जो अत्यन्य युवती हो उसको यवीयसी कहते हैं। (इस अर्थसे यह कदापि नहीं सिद्ध हो सकता कि स्त्रियोंकी अवस्था पुरुषोंसे अधिक हो।)

इससे यह सिद्ध हुआ कि, रजस्वला होनेके बाद युवती-कन्यासे युवा पुरुष विवाह करे। अथर्व वेदका मंत्र है कि—

"ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दतेपतिम्।"

(कां ११प्र २४ अ० ३ मं० १८)

इसका अर्थ तो स्पष्ट ही है कि, ब्रह्मचर्य्य करके तब कन्या युवापतिसे विवाह करे। इसलिये जब कन्यायें रजस्वला हो जाती हैं, तभीसे उन्हें ब्रह्मचर्य्य करना आवश्यक होता है। रजस्वला होनेके प्रथम तो कन्याओंमें व्यभिचारकी योग्यता हो नहीं रहती, इसलिये जबसे व्यभिचारकी योग्यता होती है तबसे रज शुद्धि तक कन्याओंको भी ब्रह्मचर्य्य करना चाहिये। जैसे पुरुषको वीर्य्य प्रादुर्भावके बाद ही ब्रह्मचर्य्य करना आवश्यक होता है वैसे ही रजोदर्शनके बाद ही

× नोट—आपस्तम्बमें भी यही अर्थ लिखा है।

कन्याओंका भी ब्रह्मचर्य्य पालन करना आवश्यक है। उसके पहिले तो वे लोग स्वयं ब्रह्मचारी हैं। अग्निको उष्ण नहीं कहा जाता, वह तो स्वतः उष्ण है। सारांश यह हुआ कि, रजस्वला होनेके बाद ब्रह्मचर्य्य करके कन्या युवापतिसे विवाह करे।

यदि कहिये कि, यह वेद वाक्य स्वयम्बर करनेके लिये है, तो "त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत" (मनु ९-९०) के अनुसार स्वयम्बर समय भी तो १५ या १६ वर्षके बाद ही आता है। इससे भी रजस्वलाके बाद ही ब्रह्मचर्य्य करके कन्याका युवापतिसे विवाह करना सिद्ध हुआ। इसका यह तात्पय कदापि नहीं है कि, जिसको स्वयम्बर करना हो वही कन्या ब्रह्मचर्य्य करे तथा जिसको विवाह करना हो वह कन्या ब्रह्मचर्य्य न करे।

निर्णय सिन्धु * के कन्या विवाह प्रकरणमें यम वाक्य है कि—

> कन्या द्वादश वर्षाणि या प्रदत्ता वसेद्गृहे।
> भ्रूण हत्या पितुस्तस्या सा कन्या वरयेत्स्वयम्॥

अर्थात्।—जो कन्या १२ वर्ष तक विना विवाही अपने पिताके घरमें रह जाती है, उसके पिताको भ्रूण हत्या (गर्भ हत्या) * का पाप लगता है और कन्या स्वयम्बर करले। इसमें जो गर्भ हत्याका पाप कहा गया है वह मिथ्या है। क्योंकि उस समयमें गर्भ स्थिति नहीं होती तो गर्भ हत्याका पाप कैसे लगेगा? इसका विस्तार चतुर्था-ध्यायमें किया जायगा? बारह वर्षके बाद ही स्वयम्बर करनेके

---

* नोट—इसकी व्याख्या द्वितीयाध्यायमें फिर की जायगी। २ तथा भ्रूण हत्याका पाप यज्ञमें नहीं दीहुई कन्याओंके प्रायश्चित्तके लिए कहा गया है।

लिये जो कहा गया है, वह पूर्वोक्त भारतके (त्रिंशद्वर्षः षोड़शाब्दाम्) वचनसे विरुद्ध है। क्योंकि उसमें १६ वर्षको कन्याका विवाह करना बतलाया गया है तथा "त्रीणि वर्षाण्यृतु मती कांक्षेत पितृ शासनम्" (पाराशर, माधवीय तथा बौधायन) से भी विरुद्ध है क्योंकि उन लोगोंने भी ऋतुकालके तीन वर्ष बाद कन्याका विवाह कहा है और पूर्वोक्त मनु ९-९०के भो विरुद्ध है। क्योंकि उन्होंने १५ या १६ वर्षके बाद स्वयम्बर करनेको लिखा है। मनुस्मृतिसे विरुद्ध किसी स्मृतिका प्रमाण नहीं माना जाता।

छान्दोग्य ब्राह्मणमें लिखा है कि—

"मनुर्वै यत्किञ्चिदवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः।"

अर्थात्। मनुजीने जो कुछ कहा है वह भेषजोंका भेषज है। याने प्रमाणोंका भी प्रमाण है बृहस्पतिजी भी लिखते हैं कि—

"वेदार्थोपनिबद्धत्वात्प्राधान्यंहि मनोःस्मृतम्।
मन्वर्थविपरीतातु या स्मृतिः सा न शस्यते॥

अर्थात वेदार्थानुकूल होनेसे मनुस्मृति हो सर्व प्रधान स्मृति है। इससे विपरीत स्मृतियोंका प्रमाण न मानना चाहिये। अतएव मनु तथा भारत विरुद्ध होनेसे १२ वर्षकी कन्याका स्वयम्बर करना ठीक नहीं है।

मनुस्मृतिके टीकामें कुल्लूक भट्टने लिखा है कि,—

"पित्रादिभिर्गुणवद्वरायादीयमानाकन्या संजातार्तवा सती त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत वर्षत्रयात्पुनरुर्ध्वमधिक गुण वरालाभे समान जाति गुणं वरं स्वयं वृणीत।"

-(मनु० ९ ९०)

अर्थात् यदि पिता अधिक गुणवान् वरके साथ रजस्वला होनेके पहिले कन्याका विवाह न कर सके तो ऋतुकालके बाद कन्या तीन वर्ष तक अधिक गुण वाले वरकी प्रतीक्षा करके सदृश-गुण वाले वरके साथ स्वयम्बर कर ले।

यह कुल्लूक भट्टका मनगढ़न्त अर्थ पाराशर, गाधवोय, बौधायनके विरुद्ध है। क्योंकि इन लोगोंने लिखा है कि, ऋतुकालके बाद तीन वर्षतक कन्या पितृशासन (पितृकृत विवाहाधिकार) की प्रतीक्षा करे। उसके उपरान्त सदृश वरके साथ कन्या स्वयम्बर कर ले। "त्रीणि वर्षाण्यृतु मती कांक्षेत पितृ शासनम्"

इन प्रमाणोंसे तो ऋतुकालके बाद तीन वर्ष तक विवाहके लिये पितृशासनकी प्रतीक्षा कही गई है, और कुल्लूक भट्ट ऋतुकालके तीन वर्ष बाद तक गुणवान वरको प्रतीक्षा करनेको कहते हैं, किन्तु कुल्लूक भट्टका कहना ठीक नहीं है। मनुजीका यही अभिप्राय है कि, अधिक गुणवान् वर न मिलने पर ऋतुकालके तीन वर्ष बाद तक "वराय सदृशाय च" (मनु० ९-८८) के अनुसार सदृश वरके साथ यदि पिता कन्याका विवाह कर दे तो कन्याको स्वयम्बर करनेका कोई अधिकार नहीं है। यदि उस समय तक पिता सदृश वरके साथ किसी प्रकार कन्याका विवाह न कर सके तो उसके बाद कन्या ही सदृश वरके साथ स्वयम्बर कर ले। क्योंकि तब पिताको कन्यादान देनेका अधिकार नहीं रहता। जैसा कि, मनुजीने लिखा है कि—

पित्रे न दद्याच्छुल्कंहि कन्यामृतुमतीं हरन्।
सहि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात्॥"

मनु० ९-९३)

"ऋतुयुक्तां कन्यां वर: परिणयन् पित्रे शुल्कं न दद्यात्।
यस्मात् स पिता ऋतु कार्यापत्योत्पत्ति निरोधात् कन्याया: स्वामित्वाद्धीयते॥"

अर्थात् स्वयम्बरमें वर ऋतुमती कन्याके पिताको कुछ भी शुल्क (दहेज़) न दे। क्योंकि कन्याके सन्तानोत्पत्तिकाल गर्भ समयको उसने रोका है, इसलिये अब कन्यामें उसका स्वामित्व नहीं रह गया।

यह श्लोक स्वयम्बरमें शुल्क निषेधके लिये कहा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, कन्याके गर्भ समय (सुश्रुतोक्त १६ वर्षके बाद) के पूर्व पिताको विवाह कर देना चाहिये, यदि तबतक पिता कन्याका विवाह नहीं कर सकता तो उसके बाद गर्भकाल आजानेसे गर्भहानि होती है, इसलिये पिताका विवाहाधिकार नहीं रह जाता, (तभी स्वामित्वका अभाव होनेसे उसको शुल्क देनेका निषेध किया गया है) क्योंकि उस समयके बीतने पर सन्तानकी हानि होती है, इसलिये गर्भकाल में (सोलहवें वर्ष या उसके बाद) कन्या स्वयं ही स्वयम्बर कर ले।

तथा याज्ञवल्क्यजीका वचन है कि,—

"अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ।
गम्यं त्वभावे दातृणां कन्या कुर्यात्स्वयम्बरम्॥"

अर्थात् जो पिता भ्रूण (गर्भ) स्थिति-समयके प्रथम

कन्यादान नहीं देता उसको ऋतु-में भ्रूणहत्याका पाप लगता * है। इसलिये यदि गर्भाधानके प्रथम समय तक कन्यादान देने वाला न हो तो बादको कन्या ही स्वयम्बर कर ले, जिससे सन्तानोत्पत्तिकी हानि न हो।

अस्तु इसका भी यही तात्पर्य है कि गर्भाधान समयके पहले १५ या १६ बर्ष तक कन्यादान होना चाहिये, तबतक जो कन्यादान नहीं करता उसके बाद गर्भाधान काल आजानेसे तथा उस गर्भाधान कालके व्यर्थ होनेपर उसेगर्भ नष्ट होनेका पाप लगता है। उस समय यदि कन्यादान करने वाला न हो तो उसके बाद कन्याको स्वयं ही स्वयम्बर कर लेना चाहिये। वह दाताके अभावमें भी होता है। और मनुजी ९-९० के अनुसार दाताओंके रहने पर भो होता है। अब सिद्ध हो गया कि, ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् वेद-वाक्य केवल स्वयम्बर हीके लिये नहीं है बल्कि "त्रिंशद्वर्षः षोड़शाब्दाम्" "त्रीणि वर्षाण्यृतुमती" तथा "त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत" के अनुसार कन्याओंको ब्रह्मचर्य्य कराके तब विवाह करनेके लिये है।

"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायाँ वीर्य्यलाभः" (योग सूत्रम्) अर्थात् ब्रह्म-चर्यसे वीर्य्य लाभ होता है। इसलिये सर्व सम्मत होनेसे कन्या तथा पुरुषोंको सुश्रुतोक्त काल तक ब्रह्मचर्य्य करना चाहिये।

---

*—याज्ञवल्क्यानुसार रजशुद्धिके बाद तथा सुश्रुतानुसार १६ वें वर्षके बाद रजशुद्धि होने पर कन्याओंका गर्भाधानकाल बतलाया गया है, इसलिये १५ या १६ वर्षमें कन्याओंका विवाह कर देना चाहिये। तबतक विवाह न करनेसे भ्रूणहत्याका पाप लगता है, क्योंकि उसके बादही भ्रूण स्थिर रहने का समय है। सुश्रुतानुसार ही याज्ञवल्क्योक्त रजशुद्धि होती है। (इन सब बातोंका विस्तार चतुर्थाध्यायमें किया जायगा।)

"पंचविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोड़शे।
समत्वागत वीर्य्यौ तौ जानीयात्कुशलोभिषक्॥"

अर्थात् चतुर वैद्य पचीसवें वर्षमें पुरुषको पूर्ण वीर्य्य वाला समझे और सोलहवें वर्ष में स्त्रीको पूर्ण वीर्य्य (रज) वाली समझे।

न्यून ब्रह्मचर्य्याधिकार होनेसे वाग्भट्टोक्तानुसार पुरुष २० वें वर्ष में भी पूर्ण वीर्य्यवान् हो सकता है। उस समय तक वर कन्याओंको ब्रह्मचर्य्य करके तब विवाह करना चाहिये। बादको मनु० ९-९१ के अनुसार स्वयम्बर करनेसे भी कन्याओंको पाप नहीं लगता। निर्णय-सिन्धुकारने जो लिखा है कि, "अत ऊर्ध्वं रजस्वला" (इत्यादेश्च दशवर्षादूर्ध्वं यद्यपि विवाहो निषिद्धस्तथापि दातुरभावेद्वादशाब्दे षोड़शाब्दे ज्ञेये।) निर्णय सिन्धौ कन्या-विवाह प्रकरणम्)

अर्थात् इसके बाद कन्यायें रजस्वला हो जाती हैं, इससे यद्यपि दश वर्ष के बाद कन्याओंका विवाह न होना चाहिये, तब भी यदि कन्यादान करने वाला न हो तो १२ वें या १६ वें वर्ष में कन्याओंका विवाह हो।

निर्णयसिन्धुकारका यह लिखना वेद, भारत और मनुजीके विरुद्ध है। क्योंकि मनुजोने "हृद्यां द्वादश वार्षिकीम्" ९-९४ में १२ वें वर्ष संकेत पक्षमें कन्याओंका याज्ञिक विवाह लिखा है। (यह द्वितीया ध्यायमें लिखा जायगा) तथा "सम्प्राप्ते द्वादशे वर्षे" से पाराशरजीने भी याज्ञिक ही कार्यके लिये बारहवें वर्ष में कन्यादान न देनेसे पाप लगाया है। इसलिये दश वर्षके बाद विवाह न होनेकी निर्णयसिन्धुकी बात कट गई। तथा इन्हीं प्रमाणोंसे बारहवें वर्षमें याज्ञिक विवाह काल

होनेसे उसमें स्वयम्बर करना भी ठीक नहीं है। भला १२ वर्षकी कन्या स्वयम्बर ही क्या करेगी? निर्णयसिन्धुकार कहते हैं कि, यदि दाता न रहे तो १६ वें वर्षमें कन्याका विवाह या स्वयम्बर होना चाहिये, और भी कुछ लोगोंका कहना है कि, पिताके अभावमें स्वयम्बरके लिये ऋतुकालोत्तर विवाहके वचन कहे गये हैं, जो आगेके प्रमाणोंसे विरुद्ध होनेके कारण ठीक नहीं * हैं। क्योंकि "त्रीणि वर्षाण्यृतुमती कांक्षेत पितृ शासनम्" "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती" और "त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भर्य्यां" आदि बौधायन मनु, तथा भारतके विरुद्ध है। इन श्लोकोंमें ऋतुकालके तीन वर्ष बाद पिताके विवाह करनेकी प्रतीक्षा कही गई है, उसी समयमें पिता या अन्य दाताके अभावमें स्वयम्बर नहीं कहा गया है और ऋतुकालके तीन वर्ष बाद गुणवान् वरकी प्रतीक्षा नहीं कही गई है, किन्तु ऋतुकालके बाद तीन वर्ष तक पितृ शासन कालमें पितृकृत विवाहकी प्रतीक्षा कही गई है। इसमें ऋतुकालके तीन वर्ष बाद विवाह कहा गया है। ऋतुमतीके विवाहका निषेध नहीं किया गया है। उसके विवाहमें पाप नहीं लगाय गया है। ऋतुकालके तीन वर्ष बाद यदि किसी प्रकारसे सदृश वरके साथ पिता विवाह न कर सके तो उसके बाद स्वयम्बर कहा गया है। १२वें वर्षमें रजस्वला होते ही स्वयम्बर नहीं कहा गया है। किन्तु यदि उक्त समय तक विवाह न हो सके तब स्वयम्बर कहा गया है। कन्यादान करने वालेके अभावमें स्वयम्बर नहीं कहा गया

नोट—* रुक्मिणी तथा दमयन्तीका स्वयम्बर उनके पिताके सामने ही हुआ था।

है बल्कि ऋतुकालके बाद तीन वर्षके भीतर पिताको कन्याका विवाह कर देनेके लिये कहा गया है। इसलिये दाताके अभावमें १६वें वर्षमें विवाह हो, यह कहना भी ठीक नहीं है। किन्तु दाताके रहनेपर १६ वें वर्षमें विवाह होना चाहिए।

अस्तु सब बातोंका सारांश यह है कि, १५ या १६ वर्ष तक कन्याओंका विवाह काल है, उसके बाद स्वयम्बर काल है।

इति प्रथमाध्याये ऋतुमती विवाह प्रकरणम्

द्वितीयाऽध्यायः।
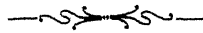
याज्ञिक-विवाह।

कन्येव तन्वा शाशदाना एषि देवि देव मियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती॥

ऋग् ० मं० १ सू० १२३ अ० १८ मंत्र १०

तन्वा शरीरेण शाशद्यमाना स्पष्टतां प्राप्नुवती शाशद्यमाना इति यास्कः कन्येव कमनीया भवति क्वेयं नेतव्येति वेति यास्कः। सा यथा जनान्तिके विवसना संचरति तथा हे उषः त्वं कन्या कमनीया प्रगल्भा सती तन्वा शरीरेण शाशदाना स्पष्टतां गच्छन्ती दृश्यसे पश्चात् प्रगल्भा हे देवि देवनशीलं इयक्षमाणं यष्टु ।मच्छन्तं अभिमतं दातुमिच्छन्तं वा देवं द्योतन स्वभावं सूर्य्यरूपं प्रियं एषि गच्छसि।

ततः पश्चात् युवतिर्यौवनोपेता सती पुरस्तात्पत्युः सूर्य्यस्य पुरतः संस्मयमानासमीषद्धसन्ती हास्यं कुर्वती विभाती अत्यन्तं भासमाना वक्षोप लक्षिता नवयवानाविष्कुरुते प्रकटी करोषि यथा लोके प्रगल्भा योषित् पुरस्ताद

प्रियतमस्य पुरतः संस्मय माना दन्तप्रदर्शनाय ईषद्धसनं कुर्वती वक्षसि वक्षो-पलक्षितानि गोप्यानि वाहुमूलस्तनादीनि आविष्करोति तथा त्वमपीत्यर्थः।

(इति सायण भाष्यम्)

अर्थात्।—हे दिव्य रूपी उषे (सूर्य्यकी प्रथम प्रभा)! जैसे कन्या अपने शरीरको वस्त्रोंसे न छिपाती हुई मनुष्योंके बीचमें जाती है और स्पष्ट दिखलाई देती है वैसेही तू भी दिखलाई देती है। उसके बाद यज्ञ करने वालेके पास वही कन्या उसका मनोरथ पूरा करनेके लिये जाती है और तूभी अपनी अभिलाषा करने वाले सूर्य्यके पास जाती है और जैसे सुन्दर हँसती हुई युवती पतिके सामने अपने रूपों या गुप्त अंगोंको प्रकट करती है वैसेही तूभी सूर्य्यके सामने अपने रक्त पीत आदि रूपोंको प्रकट करती है।

इस मंत्रमें बाल कन्याकी उपमा सूर्य्यकी बाल किरणसे दीगई है और यास्काचार्य्यने लिखा है कि, बाल कन्या कमनीया होती हैं तो उसका विवाह कहाँ करना चाहिए। इस विचारके उत्तरमें "इयक्ष माणं देवं" कहा गया है। अर्थात् जैसे वह बाल कन्या यज्ञ करने वाले पतिके पास प्राप्त होती है वैसेही उषः तू भी देदीप्यमान सूर्य्यके पास प्राप्त हो। यहाँ पतिकी सूर्य्यसे उपमा दीजाती है। इससे सिद्ध हुआ कि बाल कन्याओंका विवाह याज्ञिक कार्य्यके ही लिये किया जाय इसी आशयको लेकरके मनुजीने "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्याम् हृद्यां द्वादश वार्षिकीम्। त्र्यष्ट वर्षोष्ट वर्षाम्वा धर्मे सीदति सत्वरः।" लिखा है। अर्थात् धार्मिक यज्ञादि कार्य्य नष्ट होता हो तो शीघ्रताके कारण ३० या २४ वर्षका पुरुष १२ या ८ वर्षकी कन्यासे विवाह

करले। फिर इसी मंत्रके उत्तरार्धमें युवती कन्याकी उपमा सूर्य्यकी पूर्ण प्रभासे दीगई है। जैसे युवती कन्या भोग करानेके लिये अपने अंगोंको प्रकट करती हुई अपने पतिके पास प्राप्त होती है वैसेही हे उषे तू भी युवती होकर अपने रक्त पीतादि रूपको प्रकट करती हुई सूर्य्यके पास प्राप्त हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि, जब विलासिता या सम्भोगकी योग्यता युवती कन्यामें आजाय तभी पतिके पास प्राप्त होनेके लिये उसका विवाह करना चाहिये।

इसी उत्तरार्धसे युवती विवाह सिद्ध होता है इसी पक्षको लेकर मनुजीने प्रथम "त्रीणि वर्षाणि" (९-९०) से रजस्वलाओंका विवाह कहा, फिर इसी मंत्रके पूर्वार्धसे याज्ञिक कार्य्यके लिये "त्रिंश-द्वर्षोद्वहेत् कन्याम्" (९-९४) से याज्ञिक कार्य्यके लिये संकेत पक्षमें बाल कन्याओंका विवाह करनेके लिये कहा है।

इन्हीं दोनों पक्षोंके विवाहोंकी सब जगह धर्म शास्त्रोंमें चर्चा कीगई है। (कुछ लोग एकही पक्षको लेकर अनर्थकर रहे हैं)

रजस्वला विवाह प्रथमाध्यायमें लिखा गया है अब बाल कन्याओं का याज्ञिक विवाह लिखा जाता है।

मनुजीने लिखा है कि,—

"त्रिंशद्वर्षो द्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादश वार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोष्ट वर्षा म्वा धर्मे सीदति सत्वरः॥"

(मनु० ९-९४)

धर्मे (यज्ञादि कार्य्ये) सीदति (स्त्रियम्बिनावसादं गच्छति सति) सत्वरः (शीघ्रकारी) त्वरयालब्ध-रजस्वलः। त्रिंशद्वर्षः पुरुषः द्वादश-वार्षिकीम् हृदय प्रियां कन्यामुद्वहेत्। वा चतुर्विंशति वर्षः अष्टवर्षां कन्यामुद्वहेत।

(अर्थात्।) यदि धार्मिक यज्ञादि कार्य्यमें शीघ्रता हो और ऋतु-मती कन्यायें न मिलती हों तथा बिना स्त्रीके यज्ञादि कार्य्य नष्ट होता हो तो ३० वर्षका पुरुष १२ वर्षकी हृदयप्रिया कन्यासे तथा २४ वर्षका पुरुष ८ वर्षकी कन्यासे विवाह कर ले। क्योंकि यज्ञादि, वैदिक, धार्मिक कार्य्य बिना स्त्रीके पूर्ण नहीं होते, इसीलिये "दम्पत्योः सहाधिकारात्" से स्त्रियोंके साथ पुरुषोंको यज्ञ करनेका अधिकार वेदोंमें लिखा है। मनुजीने भी लिखा है "तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्यासहोदितः।" (९-९६) तट्टीका—

अग्न्याधानादिरपि धर्मः पत्न्या सहितः साधारणः वेदेऽपि "क्षौमे वसानावग्निनाधीयाताम्"

अर्थात् वैदिक धार्मिक कार्य्य स्त्रियोंके सहित होते हैं, यह सामान्य धर्म है। उसकी टीकामें भी लिखा है कि, यज्ञादि कार्य्य (अग्न्याधानादि) स्त्रीके साथ करना चाहिये। पवित्र वस्त्र पहिन कर स्त्री पुरुष अग्न्याधान करें। ये सभी धार्मिक यज्ञादि कार्य्य यदि स्त्रीके बिना नष्ट होते हों और "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" मनु० ९-९० के अनुसार १५-१६ वर्षकी कन्या न मिलती हो तो संकेत पक्षमें "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्" मनु० ९-९४के अनुसार १२ वर्ष या ८ वर्षकी ही कन्याके साथ विवाहकर ले तो दोष नहीं लगता। यदि धार्मिक यज्ञादि कार्य्यमें शीघ्रता न हो तो ऐसा विवाह न करना चाहिये, क्योंकि "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" से १५ या १६ वर्षकी कन्याके विवाहका अधि-कार प्राप्त है और "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्याम्" यह विधि वाक्य नहीं नियम वचन है, क्योंकि "त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्य्यां" भारतसे तथा "स्त्रियं न पुंसकत्व निवृत्तये स्त्रीत्वेन परीक्षिताम्" मिताक्षरा "अनन्य पूर्विकां

कान्तामस पिंडाम् यवीयसीम्" याज्ञ० आचाराध्याय ३-५२ से, "त्रीणि-वर्षाण्युदीक्षेत" मनु० ६-६० से, "ब्रह्मचर्य्येण कन्या—युवानं विन्दते" अथर्व वेदसे तथा "नारी तु षोडशे" सुश्रुतसे "अनग्निका तु श्रेष्ठा" गो० गृह्य सूत्रसे "साकूतिमिन्द्र सच्युतिम्" तैत्तरीय ब्राह्मण इत्यादि वाक्योंसे १५ वें तथा १६ वें वर्षमें ऋतुमती कन्याओंके विवाहका विधान है। इसमें सन्देह नहीं कि "प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन्दोषी" (गौतम अध्याय २-७) "विवाहस्त्वष्ट वर्षायाः" (संवर्त)। " विवाहयेदष्टवर्षामेंवंधर्मो न हीयते" दक्ष तथा "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादश वार्षिकीम्। मनु ६-९४ इत्यादि वाक्योंसे ऋतु कालके प्रथम भी विवाहकी अज्ञा पाई जाती है परन्तु दोनों बचनोंमें विरोध पड़नेसे 'नियमः पाक्षिके सति' अर्थात् यदि अनुकूलऔर प्रतिकूल दोनों वाक्य साथ प्राप्त हों तो (एक वाक्य व्यर्थ होकर एक पक्षमें नियम करता है) इस मोमांसा-बचनके अनुसार "त्रीणि वर्षाण्यु-दीक्षत" से ऋतुमती कन्याओंके विवाहका अधिकारप्राप्त होंने पर त्रिंशद्वर्षोद्वहेत् कन्याम्" यह मनु वाक्य व्यर्थ होकर धर्मेसीदति-सत्वरः के अनुसार एक पक्षमें नियम करेगा कि यदि, "ऋतु कालात्प्रा-कन्यानां विवाहः स्यात्तर्हि यज्ञादि कार्य्यं एवनान्यत्र।" ऋतु कालके पहले कन्याओं का बिवाह हो तो वैदिक धार्मिक यज्ञादि कार्य्य ही के लिये हो अन्यत्र न हो इस तरहके नियमसे ऋतु कालके पहिलेके सभी वैवाहिक वाक्य चरितार्थ हो गये। यह याज्ञिक विवाह संकेत पक्षके लिये कहा गया है इसलिये "धर्मे सीदति" पढ़ा गया है इस नियमसे ऋतुका-लोत्तरके भी विवाह बचन व्यर्थ नहीं हुये "प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन्हि-

दोषी" (यम)। इसका भी यही अर्थ है कि, याज्ञिक कार्य्य के लिये जो ऋतु कालके पहिले कन्यादान नहीं देता वह दोषी समझा जाता है। क्योंकि जब धार्मिक कार्य्य में शीघ्रताके कारण १५-१६ वर्षकी कन्यायें नहीं मिल रही हैं और उनके पिता विवाहके लिये उनके पूर्ण काल (१५-१६ वर्ष) की प्रतीक्षा कर रहे हैं तो यज्ञ नष्ट हो जाने से उन लोगोंको पाप लगता है। इसलिए उस अवसर पर कन्या विवाहके पूर्ण कालकी प्रतीक्षा न करके ऋतुकालके प्रथम ही दान देना लिखा गया है। ऋतु मत्यान्तु तिष्ठन्त्यां दोषः पितर मृच्छति" (वशिष्ठ अ. १६) अर्थात् उस समय यज्ञ कार्य्यके लिये दान न दी हुई कन्यायें जब ऋतुमती हो कर पिताके घरमें बैठी रहती है तो पितरों का दोष लगता है। इसलिए यदि ऋतुकालके प्रथम ही याज्ञिक धर्मादि कार्य्य के लिए कन्याओंकी आवश्यकता हो तो कन्या दान दे देना चाहिये।

"धर्मे सीदति सत्वरः" से यही सिद्ध होता है कि, इसके अतिरिक्त ऋतुकालके पहिले कन्या दान कभी न देना चाहिये। तथा "माता चैव पिता चैव ज्येष्ठ भ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्।" अर्थात्।—माता पिता तथा जेठा भाई रजस्वला कन्याको देखकर नरक जाते हैं। इसलिये यदि याज्ञिक कार्य्यकी आवश्यकता हो तो ऋतुकालके पहिले ही कन्याओं का विवाह कर देना चाहिये अन्यथा स्त्रीके विना यज्ञादि धार्मिक कार्य्य नष्ट होने के कारण उन कन्याओं के माता पिता आदिकको दोषी होना पड़ता है और कन्यायें दूषित हो जाती हैं। ऐसी ही कन्याका रजस्वला

हो जाने के उपरान्त विवाह करने से दोष लगता है, जिससे प्रायश्चित पूर्वक उनका विवाह सम्पादित किया जाता है और जो कन्यायें याज्ञिक कार्य्यके लिये नहीं मागीं गई हैं उन्हें कोई दोष नहीं लगता तो रजस्वला होने के बाद उनका विवाह करने से कोई पाप भी नहीं लगता। "सम्प्राप्ते द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति। मासि मासि रजस्तस्या पिबन्ति पितरो निशम्॥" पारा. अ. ७-७ में मनु. ९-९४ के अनुसार लिखा गया है कि याज्ञिक इत्यादि धार्मिक कार्य्योंके लिये जो १२ वर्ष की कन्याका दान नहीं देता केवल इस विचार से कि, रजस्वला होकर पूर्ण युवती होने पर विवाह करना उचित है। उसके ऐसे विचारसे याज्ञिक इत्यादि धर्म कार्य्य नष्ट होते हैं। और इस प्रकार याज्ञिक कार्य्यके लिए कन्या देनेसे इन्कार करनेके कारण ही ऋतुकालोत्तर कन्या दाताओंको पाप का भागी बनना पड़ता है। रज पीने की बात याज्ञिक कार्य्यके लिए कन्यादान न देने से प्रायश्चितके लिये उस कन्यादाता की निन्दा मात्र है। "कन्या द्वादश वर्षाणि याप्रदत्ता वसेद्गृहे। भ्रूणहत्या पितुस्तस्या सा कन्या वरयेत्स्वयम्॥" अर्थात्-जो विना विबाही कन्या १२ बर्ष तक पिता के घरमें रह जाय तो उसके पिताको भ्रूणहत्या का पाप लगता है और वह कन्या स्वयम्बर करले। इसका भी यही तात्पर्य है कि यज्ञ कार्य्यके लिये भी जो अपनी कन्या को १२ वर्षके पहिले दान नहीं देता तो उसको दोष लगता है। भ्रूण हत्याका पाप केवल प्रायश्चित्त के लिये कहा गया है। अर्थात्—यज्ञ कार्य्य में ऋतुकाल के पहिले भी जो कन्या दान नहीं दी गई है उसके रजस्वला होने पर प्रायश्चित्त पूर्वक उसका विवाह

करना चाहिये। इसमें केवल १२ वर्ष ही के बाद जो स्वयम्बर कहा गया है वह मनुजी तथा बौधायनजी के विरुद्ध तथा लोक बिरुद्ध होने से माननीय नहीं है "लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नहि" लोक विरोधी धर्म को न मानना चाहिये। अस्तु १२ वर्ष की कन्याका कभी स्वयम्बर नहीं हुआ है तथा १२ बर्षकी कन्या स्वयम्बर ही क्या करेगी ? इसलिये १२ वें वर्षमें स्वयंबर करना ठीक नहीं है। तथा—

अष्ट वर्षा भवेद्गौरी नव वर्षा च रोहिणी।
दश वर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥ (पारा० अ० ७-६)
प्रयच्छेन्नग्निकां कन्या मृतुकाल भयादिह।
ऋतु मत्यान्तु तिष्ठान्त्याम् दोषः पितरमृच्छति॥ (वशि० अ० १७-६)
पितुर्गेहन्तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता।
भ्रूणा हत्या पितुस्तस्या सा कन्या वृषली स्मृता॥
तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नतु मती भवेत्।
सप्तसम्बत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः॥
कन्यायाः शस्यते राजन्नन्यथा धर्म गर्हितः।

इत्यादि और भी अनेक वाक्य ऐसे हैं जिनसे ऋतुकालके प्रथम विवाह होना पाया जाता है तथा उस समय विवाह न करनेसे पापका लगना भी पाया जाता है। प्रायः सभी वाक्योंका यही तात्पर्य है कि याज्ञिक इत्यादि धार्मिक कार्य्योंमें शीघ्रताके कारण यदि १५-१६ वर्षकी कन्यायें न मिलती हों तो उनसे छोटीसी छोटी कन्याओंका भी विवाह होसकता है।

"कनीन केव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके, बभ्रू यामेषु शोभते।"
(ऋ० मं० २-६-३०-७)

भाष्यम्—"कन्या कमनीया भवति सर्व एव हितां प्रार्थयन्त एव" अथवा कयं नेतव्येति वा दानायेत्येव तां प्रति पिता चिन्तयतीति कन्या नवे नव जाते अर्भके अवृद्धे अल्पके इत्यर्थः ॥

(भावयव्य रोमशा सम्वादे)

अर्थात् ।—कन्या कमनीया होती है। सभी उसके लिये प्रार्थना करते हैं। स्तन आदिक स्त्री धर्मसे वंचित कन्याका पिता भी विचार करता है कि, इसको किसे दूं ?

इसका भी यही तात्पर्य है कि, इतनी छोटी कन्याको यज्ञकार्य्यके लिये किसे दूं ? सभी याज्ञिक विवाहके लिये इसकी प्रार्थना करते हैं। किस यज्ञकर्त्ताका पीत्नत्व पूर्ण करूं ? पिताको ऐसी चिन्ता होती है तो इसका भी याज्ञिक धार्मिक विषय ठहरा। एवं—"मटची हतेषु कुरुष्वाटिक्या सहजाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास" इति छान्दोग्योपनिषद । "आटिक्या अजात पयोधरादि व्यञ्जनया" (इति भगवद्भाष्यकार व्याख्यानंच ।)

"आटिक्या" यह उषस्ति चाक्रायणकी पत्नीका विशेषण दिया गया है, जिसके स्तन इत्यादि स्त्रीके चिन्ह न हो सब जगह स्वेच्छया संचारसे जिसके व्यभिचारकी आशङ्का न हो इसलिये "आटिक्या" यह विशेषण दिया गया है, इससे जो अष्टवर्षाका विवाह सिद्ध करते हैं तो यही सूचित होता है कि, यह भी याज्ञिक विवाह है, सहवासके लिये नहीं किया है, क्योंकि इसमें स्त्री चिन्होंके अभावसे सहवासकी योग्यता नहीं है, तभी तो व्यभिचारकी शङ्का नहीं की जाती है। यह भी याज्ञिक विवाह है। यदि ऐसा न माना जाय तो पूर्वोक्त वेद विहित रजस्वला-विवाहसे विरोध पड़ेगा।

और जो कहते हैं कि, ऋतुकालके प्रथम ही कन्यायें पुरुषकी इच्छा करती हैं, इसलिये तभी उनका विवाह कर देना चाहिये। यह ठीक नहीं है। क्योंकि इच्छा करने ही मात्रसे यह न समझना चाहिये कि उनको पुरुष संयोगकी इच्छा है। पुरुष संयोगकी इच्छा तो कन्याओंको रजस्वला होने परही होती है, यही सुश्रुतने लिखा भी है "नरकामां प्रियकथाम् विद्यादृतुमती मिति" (सु० शा० अ० ३०-४ तथा ५) से भी यही सिद्ध होता है कि, रजस्वलाके बाद स्त्रियों को पुरुषकी इच्छा होती है। रजशुद्ध होने पर विवाह होना चाहिए। याज्ञिक विवाहके लिये मनुजीने कहा है कि—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः॥
मनु. ९-८९

अधिक गुणवान् या सदृश वरके साथ अल्प वस्थाकी भी कन्याका विवाह कर देना चाहिये। वेद पढ़ा हुआ ३० या २४ वर्षका ब्रह्मचारी पुरुष गुणवान ही होता है। इसलिये उसके साथ याज्ञिक विवाहमें अप्राप्तकाल कन्याका सम्बन्ध कर देना चाहिये यही ९-९४में मनुजीका अभिप्राय है। यमनेभी लिखा है कि,"विवाहयेदष्टवर्षामेवं धर्मो न हीयते" अर्थात् ऐसे समयमें (याज्ञिक इत्यादि धर्म कार्य्यके लिये) ८ वर्षकी भी कन्याका विवाह करनेसे धर्म नहीं नष्ट होता। इससे भी यही सिद्ध होता है कि, यदि ऐसा समय (याज्ञिक इत्यादि धर्म कार्य्य) न हो तो इतनी छोटी अवस्थाकी कन्याओंका विवाह करनेसे अवश्य धर्म नष्ट होता है। क्योंकि उनका गर्भाशय बिगड़ जानेसे गर्भ ही नहीं ठहरेगा तो वंशोच्छेद हो जानेसे सभी वैदिक श्रौत स्मार्त

कर्म लुप्त हो जायँगे। इसलिये छोटी कन्याओंका विवाह करनेसे पाप लगता है। सभी कार्य्यके लिये "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" मनु, ९-९० के अनुसार १५-१६ वर्षकी कन्याओंके विवाहका अधिकार है। "त्रिंशद्वर्षः षोड़शाब्दां भार्य्यां विन्देतनग्निकाम्" इसका अर्थ लिखा जा चुका है। "दश वर्षोष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः" अर्थात् १० वर्षका पुरुष (बालक) ८ वर्षकी नग्निका कन्या (जो रजस्वला न हुई हो) से विवाह करे तो दश वर्षके पुरुषका विवाह सब सिद्धान्त विरुद्ध है और ८ वर्षकी अदृष्टार्तवा कन्याका विवाह मनुजीकी आज्ञानुसार याज्ञिक इत्यादि धर्म कार्य्यके लिये विहित है। इसलिये इस भारत वचनमें भी "धर्मे सीदति सत्वरः" लिखा गया है। अर्थात् जब धार्मिक यज्ञादि कार्य्य नष्ट होता हो तो ८ वर्षकी कन्याका विवाह करे। "जन्मतो गर्भाधानाद्वा पंचमाब्दात्परं शुभम्। कुमारी वरणं दानं मेखला बंधनं शुभम्॥" पाराशर माधवीयने जो लिखा है कि, जन्मसे या गर्भाधानसे पाँचवें वर्षमें कुमारीका वरण मेखला वन्धन शुभ है। इसका भी यही तात्पर्य्य है कि, याज्ञिक धर्म यदि नष्ट होता हो तो थोड़ेही अवस्थामें कन्याका विवाह कर देना शुभ है। "सप्त सम्बत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ब वर्णिकः। कन्यायाः शस्यते राजन्नन्यथा धर्म गर्हितः॥" अर्थात्—हे राजन्! सात वर्षके बाद आठवें वर्षमें द्विजाति कन्याओंका विवाह जो याज्ञिक-कार्यके लिए नहीं करते उनका धर्म निन्दित होता है। "विवाहस्त्वष्ट वर्षायाः कन्यायाः शस्यस्यते बुधैः" याज्ञिक धर्म कार्य्यके लिए ८ वर्षकी कन्याके भी विवाहकी विद्वान् लोग प्रशंसा करते हैं

क्योंकि उनसे यज्ञ पूर्ण होता है। मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र-जीने जानकीजीकी स्वर्णमयी प्रतिमाके साथ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था। "कांचनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि" (बाल्मीकीय उ० का० ९९ स० २५ श्लो०।) तथा "यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी कांचनी भवत" अर्थात्—श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि, दीक्षामें और यज्ञके लिये मेरी पत्नी जानकीजीकी स्वर्णमयी प्रतिमा हो और हर एक यज्ञमें जानकीजीकी प्रतिमा हो।

भगवान् रामचन्द्रजीने यज्ञ साधन मात्रही के लिये जानकीजीकी स्वर्णमयी प्रतिमाका निर्माण कराया था। उसीके साथ अश्वमेध यज्ञका सम्पादन किया था। उसी तरह यज्ञ साधन मात्रहीके लिये अप्राप्त काल (अल्प वयस्का १२ या ८ वर्षकी) कन्याका विवाह विहित है। ऋतुकालके भयसे अल्पवयस्का कन्याका विवाह नहीं लिखा गया है, क्योंकि वह तो मनुजीके ९-९०के अनुसार ऋतुकालके बादही होना चाहिए। इसीलिए भगवान् धन्वन्तरिजीने भी लिखा है कि, "अथास्मै पंच विंशति वर्षाय द्वादश वर्षां पत्नीमावहेत् पित्र्यधर्मार्थकाम प्रजाः प्राप्स्यति" सु० शा० १०-४६ सूत्र। अर्थात्—२५ वर्षके पुरुषका १२ वर्षकी कन्यासे विवाह हो। यहभी धार्मिक-यज्ञादि साधन मात्रके लिये हो लिखा गया है, उसी समय (१२ वर्षमें) गर्भाधान नहीं किया जाता क्योंकि गर्भाधानका समय सुश्रुताचार्य्य १६ वां वर्ष बतलाते हैं। हाँ! याज्ञिक धर्म कार्य्य पूर्ण करके १६ वें वर्षमें उससे गर्भाधान करे, तो पितृ कार्य्य करने योग्य और धर्मार्थ कार्य्य करने योग्य सन्तान होगी। इसलिये "प्राप्स्यति" यह भविष्य कालकी क्रिया कही गई है।

समः "तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत" इसलिये तभी तक दान देना चाहिये कि जब तक कन्या ऋतुमती न हुई हों।

इसका भी यही अर्थ है कि, याज्ञिक कार्य्यमें आवश्यकता पड़ने पर ऋतुकालके पहिलेही कन्यादान होसकता है। किन्हीं किन्हीं महानुभावोंका कथन है कि मनुजीने ८ वें वर्षमें ब्राह्मणोंका उपनयन (जनेऊ) करनेके लिये लिखा है, तो स्त्रियोंका विवाहही उनका उपनयन है और वही उनका पहिला संस्कार है, पतिकी सेवा करनाही उनका गुरुकुल वास है तथा गृह कार्य्यही उनका अग्निहोत्र है; इसलिये उनका विवाह ८वें वर्षमें होना चाहिए। परन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि मनुजीने तो ८ वर्षसे १६ वर्ष तक ब्राह्मणोंका, ११ वर्षसे २२ वर्ष तक क्षत्रियों का तथा १२ वर्षसे २४ वर्ष तक वैश्योंका यज्ञोपवीत काल निश्चित किया है।

"आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नाति वर्त्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतो विशः॥"

(मनु० ३-३८)

अब बतलाइये कि, आप ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य किसके यज्ञोपवीत के कालको स्त्रियोंका विवाह काल मानते हैं? जिसीके उपनयन काल को स्त्रियोंका विवाह काल मानियेगा उसीके उपनयन कालसे स्त्रियोंका पूर्ण रजकाल आजायगा। इससे तो और भी ऋतुकालके बाद विवाह सिद्ध हुआ। मनुजीका तो यह अभिप्राय है कि, जैसे वैदिक कार्य्य आरम्भ करनेके लिये पुरुषोंका यज्ञोपवीतही प्रथम-संस्कार माना जाता है, वैसेही स्त्रियोंका विवाहही यज्ञादि-कार्य्य करनेके लिये उनका प्रथम संस्कार है। यहां प्रथम संस्कारके लिये दृष्टान्त है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि जिस कालमें पुरुषोंका उपनयन होता है, उसी कालमें स्त्रियोंका विवाह हो ; और पति सेवा स्त्रियोंका गुरुकुलवास है यह भी कहना असंगत है, क्योंकि गुरुकुलमें विद्यार्थी ब्रह्मचर्य्यसे रहते हैं, कहीं भी वीर्य्यपात नहीं करते। तो क्या स्त्रीभी पति सेवा रूपा गुरुकुलमें रहकरके ऐसाही ब्रह्मचर्य्य करें ? यदि ऐसाही करनेकी आप महानुभावोंकी अनुमति है तो उनका विवाह ही क्यों किया गया यदि आपके अर्थानुसार वे पतिकुल (गुरुकुल) में रहकर ब्रह्मचर्य्यही करें तो आपहीके मतानुसार आप लोगोंको भ्रूण हत्याका दोष लगेगा। (क्योंकि आप लोग समझते हैं कि ऋतुकालके पहिले विवाह कर देनेसे उसके बादही गर्भ रहने लगता है तभी तो ऋतुकालोत्तर विवाह करनेसे गर्भ हत्याका पाप लगता है।) यदि कहिए कि, ब्रह्मचर्य्य व्रत न करना चाहिये, तो उनका गुरुकुल बासही नहीं ठहरा। पूर्वोक्त आपका अर्थ आपही के विरुद्ध होनेसे ठीक नहीं है। मेरे विचारानुसार तो अल्पावस्थामें भी धार्मिक कार्य्यके लिये स्त्रियोंका विवाह होजाने पर यज्ञ पूर्ण करके स्त्री १५-१६ वर्षकी अवस्था तक ब्रह्मचर्य्य करे तो गर्भ-हत्याका पाप नहीं लगता यदि याज्ञिक विवाहकी आवश्यकता न हो तो ब्रह्मचर्य्य करके १५-१६ वर्षकी अवस्थामें विवाह करें, क्योंकि १५-१६ वर्षकी अवस्थाके पहिले किसीको गर्भाधानका अधिकारही नहीं है और उस समयमें गर्भ स्थिरभी नहींहोता, तो भ्रूणहत्याका पाप कैसे लगेगा? मेरे मतानुसार मनुजीका तो यह अभिप्राय है कि, विवाहके बाद स्त्रियाँ गुरुकी तरह अपने पतिकी आज्ञा मानकर उनकी सेवा करें यही उनका गुरुकुलवास है और गृह कार्य्योंको श्रद्धापूर्वक करें, जैसे कि, मनुजीने कहाहै—

"सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृह कार्य्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्त हस्तया॥"

(मनु० ५-१५०)

अर्थात् स्त्रियोंको सदा प्रसन्न रहना चाहिए और गृह कार्य्यमें निपुणतासे घरकी बस्तुओंका पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिए एवं मितव्ययता करनी चाहिए। इन कार्य्योंको स्त्रियाँ अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक करें तथा गृह कार्य्यकी उपेक्षा न करें तो गृह लक्ष्मियोंको अग्निहोत्रका पुण्य होता है। इसलिए मनुजीके उपनयन प्रकरणका प्रमाण देकर ८ वर्ष की कन्याओंका विवाह करना उचित नहीं है।

जितने याज्ञिक धर्म कार्य्यके लिए ऋतुकालके पूर्वके विवाहके वचन कहे गये हैं वे केवल यज्ञ साधन मात्रके ही लिये कहे गये हैं। सहवास पूर्वक गर्भाधानके लिए नहीं कहे गये हैं। तो क्यों आप भ्रूण हत्याका पाप लगाते हैं? "अस्थास्मै पंच विंशति वर्षाय" (सु० शा० १०-४६) का भी यज्ञ-कार्य्यही के लिये अभिप्राय है, गर्भाधानके लिये नहीं है, नहीं तो "ऊन षोड़श वर्षायाम्" (सु० शा० १०-४७) से विरोध पड़ जायगा, क्योंकि यदि यज्ञादि कार्य्यके लिये विवाहित १२ वर्षकी कन्यासे गर्भाधान किया जायगा तो "तस्मात्यन्त बालायां गर्भाधान्नकारयेत्" (अर्थात् १६ वर्षसे कम आयुवाली कन्यामें गर्भाधान न करना चाहिए) व्यर्थ होजायगा। इसलिये "अस्थास्मै पंच विंशति वर्षाय" केवल याज्ञिक कार्य्य साधनके लियेही हुआ, गर्भाधान तो इससे भी १५ वर्षके बादही करना चाहिये, तो "ऊन षोड़श वर्षायाम्" और "अथास्मै पंच विंशति" से एकार्थ होजायगा। याज्ञिक

विवाहके लिए "अथास्मै पंच विंशति" और गर्भाधानके लिये "ऊन षोडश वर्षायाम्" ये दोनों बचन चरितार्थ होजायँगे।

"त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यम्" मनुका "यज्ञादि कार्य्यं अनागतार्तवाना मेव विवाहः एष विपरीत नियमो न संज्ञातार्तवाभिः सहापि यज्ञाधिकारात्" याज्ञिक धर्मादि कार्य्योंके लिए ऋतुकालके प्रथम ही कन्याओंका विवाह हो, यह बिपरीत नियम नहीं होगा, क्योंकि ऋतुकालोत्तरकी स्त्रियोंके साथ भी यज्ञ होता है। (जैसे—मरु, युधिष्ठिर इत्यादि राजाओंने अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ यज्ञ किया था।) इससे यह सिद्ध होगया कि धार्मिक यज्ञादि कार्य ऋतुकालके पहिले विवाहित या ऋतुकालोत्तर विवाहित दोनों प्रकारकी स्त्रियोंके साथ होता है। इसीलिए मनुजीने पहिले "त्रीणि बर्षाण्यु दीक्षेत" से १५ या १६ बर्षकी कन्याका बिबाह कहा फिर "त्रिशद्वर्षोद्वहेत्कन्याम्" से १२ या ८ बर्षकी कन्याका बिबाह कहा। इससे मालूम होता है कि, याज्ञिक कार्य्योंमें यदि १५-१६ बर्षकी कन्या न मिलै तो १२बर्षकी कन्यासे भी बिबाह करे और यदि यहभी न मिले तो ८बर्षकी कन्यासे बिबाह करे।

परन्तु अबतो शारदा एक्टके कारण १५ बर्षकी कन्यायें बिबाहके लिए मिलेंगी, जिनके साथ बिबाह करना परमोत्तम होगा। (क्या आवश्यकता है कि, यज्ञादि कार्य्योंमें भी संकेत पक्ष वाले बाक्य "त्रिशद्वर्षोद्वहेत्कन्याम्" को मानकर १२ या ८ बर्षकी कन्याओंसे बिबाह करे?) तो अब १५ बर्षकी कन्याका बिबाह करके मनुष्य धार्मिक यज्ञादि कार्य्य और गर्भाधानादि कार्य्य कर सकता है। इसलिए ऋतुकालके बादही कन्याओंका बिबाह करना सर्व सम्मत हुआ।

इति याज्ञिक विवाह प्रकरणन्नाम द्वितीयोध्यायः।

अथ तृतीयोऽध्यायः।
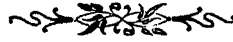
चाण्डाली वर्धकी वेश्या रजस्था या च कन्यका।
ऊढ़ा च या सगोत्रेण वृषल्यः पंच कीर्तिता ॥ १

पितुर्गेहेतु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता।
सा कन्या वृषली ज्ञेया तद्भर्ता वृषली पतिः ॥ २ (प्र० दे० स्मृत ८५-८६)

यदि सा दातृ वैकल्याद्रजः पश्येत् कुमारिका।
असंस्कृता परित्यक्ता न पश्येत्तां कदाचन ॥ ३ (मार्कण्डेयः)

रजस्वला या कन्या यदि स्यादविवाहिता।
वृषली वार्षलेयः स्यात्तज्जस्तस्यां सचैवहि ॥ ४ (लघ्वाशला० ५)

पितृ वेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता।
तस्यां मृतायां ना शौचं कदाचिदपिह शाम्यति ॥ ५ (लघ्वा० १५-८)

वृषलीं यस्तु गृह्णाति ब्राह्मणो मदमोहितः।
सदा सूतिकया तस्य ब्रह्महत्या दिने दिने ॥ ६ (३-१३)

यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
अश्राद्धेयमपांक्तेयं तं विद्याद्वृषली पतिम् ॥ ७

वृषली गमनञ्चैवं नाशमेवं निरन्तरम्।
इह जन्मनि शूद्रत्वं पुनः श्वानो भविष्यति ॥ ८

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठ भ्राता तथैवच।
त्रयस्ते नरक यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ९ (पाराशर)

चांडालकी स्त्री, वर्धकी, वेश्या, रजस्वला कन्या और जो स्वगोत्र में बिवाही हो ये पाँचों बृषली (शूद्रा) कही जाती हैं।

जो कन्यायें विवाहके पूर्वही रजस्वला हो जाती हैं, वे वृषली (शूद्रा) कहलाती हैं और जो उनसे विवाह करता है वह शूद्रा का पति कहा जाता है।

जिस कन्याका विवाह न हुआ हो वह यदि रजस्वला हो जाय तो उसका विवाह न करे, उसको निकाल दे और उसका मुख न देखे।

अविवाहिता कन्या यदि रजस्वला हो जाय तो वह वृषली कहलाती है और उससे पैदा होने वाला वृषल कहलाता है।

अविवाहिता कन्या यदि रजस्वला होकर मर जाय तो उसका अशौच जन्मभर नहीं छूटता।

जो ब्राह्मण वृषलीको ग्रहण करता है उसको सदैव अशौच लगा रहता है और प्रतिदिन ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

जो ज्ञान दुर्बल ब्राह्मण वृषली कन्याका विवाह करता वह अश्रद्धेय, अपांक्तेय* होकर शूद्राका पति कहलाता है।

जो वृषलीसे भोग करता है वह इस जन्ममें शूद्र रहता है तथा मरनेपर कुत्ता होता है।

रजस्वला कन्याको देखनेसे माता-पिता तथा जेठ भाईको नरक होता है।

इन तथा ऐसीही अन्य श्लोकोंके आधार पर रजस्वलाओंका विवाह करना पाप सिद्ध किया जाता है। किन्तु इन सब श्लोकोंका केवल यही तात्पर्य है कि जो कन्यायें याज्ञिक विवाहके लिये दान नहीं दीगई हैं

---

* जो श्राद्धमें भोजन न कराया जाय और पंक्तिमें सम्मिलित न किया जाय।

उन्हींका रजस्वला होनेपर बिवाह करनेसे माता-पिता, भाई तथा पति पुत्र इत्यादिको दोष लगता है इसलिए उन्हीं दूषित रजस्वलाओंका निम्न लिखित विधिसे प्रायश्चित्त करके तब बिवाह करना उचित है। यह बात नहीं है कि उनका बिवाही न हो या बिवाह करने वाले पापी हों।

निर्णयसिन्धु कन्या रजोदर्शन प्रकरणे—अत्र प्रायश्चित्तमुक्तमाश्वलायनेन—

कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मनः।
शुद्धिं च कारयित्वा तामुद्वहेदन्तृशास्यधीः॥ १
पिता ऋतून्स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः।
दानावधि गृहे यत्नात् पालयेच्च रजोव्रताम्॥ २
दद्यात्तद्वत् संख्या गाः शक्तः कन्या पिता यदि।
दातव्यैकापि निःस्वेन दाने तस्या यथा विधि॥ ३
दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वन्नमतिनिस्वः स दक्षिणाम्।
तस्या तीततुं संख्येषु वराय प्रति पादयेत्॥ ४
उपोष्य त्रिदिनं कन्यां रात्रौ पीत्वा गवाम्पयः।
अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्न भूषणम्॥ ५
तामुद्वहन् वरश्चापि कूष्मांडेर्जुहुयाद्द्विजः।

कन्याका पिता रजस्वला कन्याको शुद्ध करके तथा स्वयं भी प्रायश्चित्त करके कन्याका विवाह करे। १

बुद्धिमान् पुरुष अपनी कन्याका आदिसे ऋतुकाल गिने और विवाह पर्य्यन्त घरमें उसकी रक्षा करे। २

यदि पिता शक्तिमान् हो तो जितने ऋतुकाल बीते हों उतने गोदान करे, यदि दरिद्र हो तो शक्तिके अनुसार विधि पूर्वक एक गोदान भी

कर सकता है। या दक्षिणा सहित ब्राह्मणोंको अन्नदान दे तथा जितने ऋतुकाल बीते हों उसके अनुसार बरको भी दान दे। ३-४

तीन दिन तक कन्याको व्रत कराके पिताको रात्रिमें गोदुग्ध पान करके कन्याके रजो निवृत्त होने पर आभूषण दान पूर्वक उसका विवाह करना चाहिये तथा उसको विवाहने वाले बरको कुष्माण्डका हवन करना चाहिये। ५

ये सब प्रायश्चित्त यज्ञमें न दी हुई कन्याओंके रजस्वला हो जाने पर विवाह करनेके लिये कहे गये हैं। इन्हीं प्रायश्चित्तोंको करके दूषित कन्याओंका विवाह करना चाहिये। इसीसे रजपान या अपांक्तेयत्व इत्यादि दोष मिट जाते हैं।

परन्तु आज-कल तो सभी विवाहोंमें वर और कन्याके पिता दोनों यथा शक्ति गोदान करते हैं, और इस तरह सभी जगह प्रायश्चित्त हो जाता है। फिर विपक्षी क्यों रजस्वला-विवाहका निषेध करते हैं ?

शास्त्रोंके विचारसे तो ज्ञात होता है कि, आजकल रजस्वलाओंके विवाहमें दोष नहीं लगता, क्योंकि आजकल उनके मिलनेसे ऋतुकालके पहिलेकी कोई कन्या याज्ञिक कार्य्योंके लिये नहीं माँगी जातीं। इस-लिये कोई कन्या दूषित नहीं होती। अतः किसीके भी विवाहके पूर्व रजस्वला होने पर प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं है।

उपर्युक्त प्रायश्चित्त प्रकरणमें जो "अदृष्टरजसे दद्यात् कन्यायै रत्न-भूषणम्" कहा गया है और जिसका कुछ लोग अर्थ करते हैं कि, जो कन्या रजस्वला न हुई हो उसीको भूषण रत्न इत्यादि देना चाहिये यह ठीक नहीं उसका केवल यही अर्थ है कि, रजस्वलासे निवृत्त

होने पर प्रायश्चित्तके बाद आभूषण आदि देकर कन्याका विवाह करना चाहिये। और भी देखिये बौधायन सूत्रमें निर्णयसिन्धुकार लिखते हैं कि, "अथ द्वादश रात्र मलंकृत्य प्राशयेत्पञ्चगव्यमथ शुद्धां कृत्वा बिवहेत्।" अर्थात् कन्याको आभूषणोंसे सजाकर १२ रात्रि तक पञ्चगव्य पान कराके विवाह करे।

इसमें "अलंकृत्य" शब्दके कहनेसे सिद्ध हुआ कि, दूषित रजस्वलाओंको भी अलङ्कारोंसे सजाकर प्रायश्चित्तोत्तर उनका विवाह करना चाहिये।

"कन्यां ददद्ब्रह्म लोकं रौरवंतु रजस्वलाम्" इसका यही सारांश है कि, जो यज्ञ कार्य्यके लिये ऋतुकालके पूर्व ही कन्यादान देता है उसको ब्रह्मलोक मिलता है और जो उस कार्य्यके लिये कन्यादान नहीं देता तो उसको कन्याके दूषित होनेसे रजस्वला होने पर प्रायश्चित्त पूर्वक उसका बिवाह करना चाहिये। (इसी लिये रारवका पाप लगाया गया है।)

"कन्यायाः कनीन च" (४-१-११६) इस पाणिनि सूत्रके भाष्यमें महर्षि पतंजलि जीने लिखा है "कन्या शब्दोऽयं पुंसा अभि सम्बंध पूर्वके सम्प्रयोगे निवर्तते। या चेदानीं प्रागभिसम्बंधात् पुंसा सह प्रयोगं गच्छति तस्यां कन्या शब्दो वर्तते एव।" विवाह पूर्वक पुरुष संयोग होने पर स्त्रियां कन्या नहीं कही जातीं। उसके प्रथम स्त्रियाँ कन्या ही रहती हैं। अतएव मनुजी तथा भाष्यकारने भी कन्याके पुत्रको "कानीन" कहा है। रजस्वला होनेके बाद ही पुत्र उत्पन्न होते हैं इसलिये अबिवाहिता रजस्वलायें कन्या कही गई, तभी उनसे उत्पन्न

होने वाले "कानीन" कन्याके पुत्र कहे गये। इसीसे व्यास और कर्ण कन्या-पुत्र कहलाये।

इससे सिद्ध हुआ कि बिबाहके पहिले रजस्वलाओंको कन्या ही कहना चाहिये, यदि नहीं तो कन्याके पुत्र "कानीन" कैसे कहे गये? निर्णयसिंधुकारने लिखा है "कन्यामृतुमतीं शुद्धाम्" और "गृहेकन्यर्तुमत्यपि" से मनुजीने भी ऋतुमतीको कन्या कहा है। "असंस्कृतायाः कन्यायाः कथं लोकं तवानघे" (श० प० भा०) से नारदजीने भी एक अबिबाहिता वृद्धाको कन्या कहा है। इसलिये ऋतुमती अबिबाहिताका नाम कन्या हुआ। "कन्यां ददद्ब्रह्म लोकं रौरवंन्तु रजस्वलाम्" का अर्थ हुआ कि, जो ऋतुमती कन्याका दान देता है उसे रौरवका पाप लगता है। इसलिये रजोधर्मसे निबृत्त होने पर कन्याओंका बिबाह करनेमें पाप नहीं लगता बल्कि ब्रह्मलोक मिलता है। * इसीलिये निर्णयसिंधुमें भी लिखा गया है कि, "अदृष्ट रजसे दद्यात् कन्यायै रत्न भूषणम्" अर्थात्—रजस्वलासे निवृत होनेपर बिबाह करना चाहिए और जिस समय कन्या रजस्वला हुई हो उस समय बिबाह न करना चाहिये। निर्णयसिन्धुके कन्या-रजोदर्शन-प्रकरणमें बौधायनका यह सूत्र दिया हुआ है "अथ यदि कन्योपसाद्यमाना चोह्यमाना वा रजस्वलास्यात्तामनुमन्त्रयेत् अथ शुद्धां कृत्वा बिबाहेत्"

---

* यदि ऐसा अर्थ नहीं मानियेगा तो "बैकुण्ठं रोहिणीं ददत्" से विरोध पड़ जायगा क्योंकि "प्राप्ते रजांसि रोहिणी" गृ० सं० के अनुसार रजस्वला होनेपर रोहिणी नाम पड़ता है और रोहिणीका विवाह करनेसे बैकुण्ठलोक मिलता है।

अर्थात्—यदि बिबाहके समयमें कन्या रजस्वला होजाय तो "पुमांसौ मित्रावरुणौ" इत्यादि मंत्रोंके जपसे उसको शुद्ध करके उसका बिबाह करना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि, यदि कन्या मासिक धर्ममें (रजस्वला) हो तो उसी समय उसका बिबाह करनेसे पाप लगता है। इसीलिये मासिक धर्मसे निवृत्त होनेपर कन्याओंका बिबाह करनेसे पाप नहीं लगता बल्कि ब्रह्मलोक मिलता है। "कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं रौरवन्तु रजस्वलाम्" का अर्थ बहुत लोग यह करते हैं सो उचित है।

अब तो "सारडा-विधान" के कारण यज्ञ कार्य्यके लिये भी ऋतु-मती कन्यायें मिलेंगी। ऋतुकालके पूर्व किसी कन्याको कोई भी नहीं चाहेंगे, जिससे कोईभी कन्या दूषित नहीं होगी। अतः किसी कन्याके रजस्वला होनेपर बिबाह करने वालोंको पाप नहीं लगेगा। और न उनसे उत्पन्न होने वाले पापी होंगे। इसलिये प्रायश्चित्तभी न करना चाहिये। हाँ! दान देना तो सभी बिबाहोंमें अनिवार्य्य है।

पूर्वोक्त दूषित रजस्वलाके बिवाह करनेके दोष केवल प्रायश्चित्त हीके लिये कहे गए हैं। सभी रजस्वलाओंको पूर्वोक्त दोष नहीं लगते इसलिये सभी रजस्वलाओंके विवाहमें प्रायश्चित्त भी न करना चाहिये, तथा सभी रजस्वलाओंके विवाह करनेसे पाप नहीं लगता। इसीलिए पहिले भी रजस्वलाओंका विवाह उत्तम पक्ष कहा गया है और आगे भी रजस्वलाओंका विवाह शास्त्र सम्मत बतलाया जाता है।

अतएव सभी अविवाहित रजस्वला कन्याका न तो कोई रज पीता है और न उनको देखने वाले माता-पिता तथा जेठ-भाई नरक

ही जाते हैं। इसीलिए वेदमें भी लिखा है कि, "अमाजूरिवपित्रोः सचा सती समाना दासदस्त्वामिये भगम्।"

(ऋग्० मं० २ सू० १७ अ० ७)

हे इन्द्र! अमाजूः इव यावज्जीवं गृहे एव जीर्यन्ती पित्रोः सचा माता पितृभ्यां सह भवन्ती तयोः सुश्रूषण परा पति मलभमाना सती दुहिता समानादात्मनः पित्रोश्च साधारणात् गृहात् गृहं उपस्थायैव यथा भागं याचते तथा स्तोताहं भगं भजनीयं धनं त्वामि ये याचे।

इति सायण भाष्यम्॥

अर्थात् हे इन्द्र! जैसे अविवाहिता कन्या जन्म भर पितृ गृहमें रहकर अपने माता पिताकी सेवा करती हुई अपने भागको चाहती है वैसे ही स्तुति करने वाला मैं आपसे धन मांगता हूं।

इस वेद मंत्रसे यह सिद्ध होता है कि, अविवाहिता ऋतुमती कन्या जन्म भर अपने पिताके घरमें बैठी रहे तो माता-पिता तथा जेठे-भाईको पाप नहीं लगता। इसी वेद मंत्रका सारांश लेकर मनुजीने भी लिखा है कि—

"काममामरणमातिष्ठेद्गृहे कन्यर्तु मत्यपि।
न चैवनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित॥"

(मनु० ९-८९)

अर्थात् ऋतुमती कन्या मरण पर्य्यन्त पिताके घरमें बैठी रहे, परंतु गुणहीनके साथ पिता उसका विवाह कभी न करे।

इस मनु वाक्यमें भी अविवाहित रजस्वला कन्याको जन्म भर माता-पिताके घरमें बैठनेको कहा गया है। इससे रजस्वलाओंके

देखनेका जो पाप पाराशरजी तथा अन्य ग्रंथकारोंने लगाया है, वह (पाप) याज्ञिक विवाहमें दान न दी गई कन्याओंके लिए ही होता है। अर्थात् यज्ञकार्य्योंके लिये भी ऋतुकालके पहिले जिन कन्याओंका दान नहीं हुआ है, उनके रजस्वला हो जाने पर उनके माता-पिताको प्रायश्चित्त करके उनका विवाह करना चाहिए।

पूर्वोक्त वेद तथा मनुवाक्यसे सिद्ध होता है कि, यज्ञातिरिक्तकी रजस्वला कन्याओंके देखनेसे पाप नहीं लगता। जबतक गुणवान् वर न मिले तब तक रजस्वला कन्या पिताके घरमें बैठी रहे। इससे ज्ञात होता है कि, गुणवान् वर मिलने पर पिता रजस्वला कन्याका विवाह कर सकता है। इस वेद तथा मनुजीके वाक्यसे फिर भी रजस्वला विवाह सिद्ध हुआ।

इन्हीं अर्थोंसे वेद तथा मनुजीके वाक्य या उसके विरोधी सभी वाक्य चरितार्थ हो जायँगे। बाल विवाह समर्थकोंके केवल एक ही पक्षका वाक्य माननेसे वेद तथा मनुस्मृतिसे विरोध पड़ेगा। उसको हटानेके लिए यही अर्थ मानना ठीक होगा कि, ऋतुकालके पहिले भी जो कन्यायें याज्ञिक विवाह में दान नहीं दी गई हैं, उन्हींके रजस्वला होने पर माता-पिताको दोष लगता है और उन्हीं रजस्वलाओंका विवाह प्रायश्चित्त करके करना चाहिए। जो कन्यायें यज्ञकार्य्यों के लिए नहीं माँगी गई हैं, उनके रजस्वला होने पर माता-पिताको दोष नहीं लगता और न उन रजस्वलाओंके विवाहमें प्रायश्चित्त ही करना चाहिए।

इसी वेद तथा मनुजीके वाक्यसे मालूम होता है कि, सभी रज-स्वलाओंके कारण रज पीना, नरक जाना या जन्मभर अशौच लगना असत्य है। यदि रजस्वलाओंके देखनेसे पाप लगता तो वेद और मनुस्मृतिसे उन्हें जन्मभर पिताके घरमें बैठनेकी आज्ञा न मिलती।

अश्राद्धेय तथा अपांक्तेयत्व आदि दोषभी दूषित कन्याओंके केवल प्रायश्चित्त मात्र ही के लिए हैं। सभी रजस्वलाओंके लिए नहीं है। इसलिए मनुजीने कहीं भी रजस्वलासे बिबाह करने वालोंको अपांक्तेय और अश्राद्धेय नहीं कहा है। बल्कि मनुजीने तो अ० ३ श्लो० १५२-१५६ में रुपया लेकर पढ़ाने वालों या उनसे पढ़ने वालों या किसी प्रकारके (अखबार या पुस्तक बेचने वालोंके) व्यापार करने वालों शूद्रके पढ़ाने या उनसे पढ़ने वालों, वैद्य तथा ज्योतिषियोंको अपांक्तेय कहा है। इससे तो हमारे बहुतसे धुरंधर विद्वान् भी अपांक्तेय और अश्राद्धेय हो गए हैं। परंतु स्वयं अपने अपांक्तेयत्वको छुड़ानेके लिए कोई प्रायश्चित्त न करके औरोंको शास्त्रसिद्ध ऋतुमती कन्यासे बिबाह करनेके कारण अपांक्ते-यत्वका नूतन बिधान कर रहे हैं। धन्य हैं! यदि कहिए कि, आप-द्धर्मानुसार विद्वानोंको अपांक्तेयत्व नहीं लगेगा, तो मनुजी एवं वेद गृह्यसूत्र तथा याज्ञवल्क्यजीकी आज्ञानुसार ऋतुमतीका बिबाह करने वालोंको भी अश्राद्धेयत्व, अपांक्तेयत्व दोष नहीं लगेगा। रजस्वलोपरांत बिवाह करनेके जो दोष हैं वे दूषित कन्याओंके प्रायश्चित्त गौरवके लिये हैं, वे भी सभी रजस्वलाओंके लिये नहीं कहे गये हैं और जो कहते हैं कि, सभी रजस्वला कन्याओंका बिवाह

न करे या प्रायश्चित्त पूर्वक करे, सो ठीक नहीं है, क्योंकि ९-९० में मनुजीने रजस्वलाका विवाह लिखा है। सभी रजस्वलाओंके निकाल देने उनके मुख न देखने इत्यादिकी तो सभी बातें मनुजीके ९-८९ से विरुद्ध हैं। इसमें रजस्वलाको पिताके घरमें बैठनेकी आज्ञा है। परन्तु आप लोग कन्याओंको निकाल देना या उनका मुख न देखना अर्थ करते हैं, तो देखिये फिर भी मनुजी क्या लिखते हैं—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वा तत्राफलाक्रिया॥ (मनु० ३-५६)
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रति पूजिताः।
तानि कृत्या हतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥" (मनु० ३-५८)

अर्थात् जिस कुलमें स्त्रियोंकी पूजा होती है (पिता इत्यादिसे स्त्रियां पूजी जाती हैं) वहां देवता लोग रमण करते हैं। जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहांकी सब धर्मादि क्रिया नष्ट हो जाती है।

"यानि गेहानि भगिनी पत्नो दुहितृ स्नुषाद्या अपूजिता सत्योभिशपन्तीदमनिष्टमेषामस्त्विति तान्यभिचार हतानि धन पश्वादि सहितानि नश्यन्ति।" (कुल्लूक भट्ट मनु० ३-५८)

अर्थात् बहिन, स्त्री, पुत्री तथा पुत्रबध (पतोहू) इत्यादि स्त्रियोंका यदि अनादर किया जाय तो वे शाप देती हैं, जिससे धन पशु सहित घर नष्ट हो जाता है।

"शोचन्ति जामयो यत्र विनशत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सम्पदा॥"

(मनु० ३-५७)

"यस्मिन् कुले भगिनी पत्नी दुहितृ स्नुषाद्याः परितापादिना दुःखिन्यो भवन्ति तत्कुलं शीघ्रं निर्धनी भवति, देवराजादिना च पीड्यते यत्रैता न शोचन्ति तद्धनादिना नित्यं वृद्धिमेति ॥"

(कुल्लूक भट्टः मनु० ३-५७)

अर्थात् जिस कुलमें बहिन, स्त्री, पुत्री तथा पुत्रबधू इत्यादि स्त्रियां अनादरादिके कारण दुःखी होती हैं, वह कुल शीघ्रही दरिद्र होजाता है। तथा देवता और राजासे भी पीड़ित होता है। जिस कुलमें इन स्त्रियोंका अनादर नहीं होता और वे दुःखी नहीं होतीं, उस कुलकी धनादिसे वृद्धि होती है।

हाय रे आधुनिक हिन्दू धर्म ! जहां देवियोंका इतना आदर और पूजा मनुजी महाराज लिखते हैं, वहां इन वाक्योंका यथार्थ अर्थ न लगाकर स्त्रियोंका इतना अनादर किया जाता है कि, वे निकाल दी जायं तथा उनका मुख कोई न देखै। तभी तो उनके शापसे ब्राह्मणोंको दरिद्रता घेरे रहती है और देशभी दरिद्र होरहा है।

फलतः उक्त प्रायश्चित्त प्रकरणके श्लोकोंका जो तात्पर्य्य विरोधी लोग लगा रहे हैं, वह उचित नहीं है। उन श्लोकोंका यही तात्पर्य है कि, जो कन्यायें याज्ञिक विवाहके लिये ऋतुकालके पूर्व दान नहीं दीगई हैं, उनके रजस्वला होजाने पर प्रायश्चित्त पूर्वक उनका विवाह होना चाहिये, उनका मुख देखना चाहिये, और उन्हें निकालना न चाहिए।

यदि सब रजस्वलाओंका ग्रहण करना पाप समझा जाता तो स्वयम्बर-विवाहमें रजस्वला कन्याओंका ग्रहण कराके पाप करनेकी आज्ञा मनुजी न देते।

स्वयम्बर-विवाहसे तो यही ज्ञात होता है कि, रजस्वला कन्याके ग्रहण कराने वाले या ग्रहण करने वाले अथवा उनसे उत्पन्न होने वाले पाप भागी नहीं होते। यदि सब रजस्वला कन्याओंका विवाह पापजनक समझा जाता तो मनुजी तथा याज्ञवल्क्यजी गन्धर्व-विवाहको कैसे धार्मिक-विवाह लिखते ?

"पंचानांतु त्रयो धर्म्याद्वाव धर्म्यौ स्मृताविह।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन॥"

(मनु० ३-२५)

इसके टीकामें कुल्लूक भट्टने लिखा है:—"गान्धर्वस्य च चतुर्णामेव प्राप्तत्वादनुवादः।" अर्थात् गन्धर्व-बिवहका अधिकार चारो वर्णोंके लिये है।

यदि सभी रजस्वलाओंके ग्रहण तथा उनसे गमन करनेसे लोग शूद्र होजाते और शूद्र (बृषल) उत्पन्न करते, कन्याके पिता इत्यादिको सदा अशौचही लगा रहता, ग्रहण करने वालेको ब्रह्महत्या वा अपांक्तेयत्व तथा अश्राद्धेयत्व दोष लगता और वह मरनेपर कुत्ता होता तथा तथा उसके पितर रज पीते, तो क्यों मनुजीने आठ बिबाहोंमें गन्धर्व-बिबाह लिखा ? क्योंकि गान्धर्व-विवाह तो कन्याके रजस्वला होनेही पर स्त्री पुरुषकी कामेच्छासे होता है जैसे—दुष्यन्त-शकुन्तलाका गांधर्व-बिवाह हुआ था अचल-गढ़के किलेमें पृथ्वीराजने भी इच्छनकुमारीसे गांधर्व-बिबाह किया था।

"इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः सतु विज्ञेयो मैथुन्यः काम सम्भवः॥"

(मनु० ३-३२)

अर्थात् वर और कन्याकी इच्छासे दोनोंका आलिंगन पूर्वक मैथुन करनाही गांधर्व-बिवाह कहा जाता है। पिताके न रहनेपर ही कन्याका गांधर्व-बिवाह होता हो सो नहीं, पिताके रहने पर भी गान्धर्व बिवाह होता है।

निर्णयसिंधु तृ० प० गंधर्वादि प्रकरणके "गंधर्वादि बिबाहेषु पुन र्वैबाहिको विधिः। कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थेनाग्नि साक्षिकः।" अर्थात् गंधर्वादि बिबाहोंके बाद अग्निको साक्षी देकर पाणिग्रहण संस्कार पूर्वक तीनों बर्ण फिर बिवाह करें।

आदि प्रमाणसे यदि यह कहा जाय कि गंधर्व-बिबाह ठीक नहीं है, क्योंकि इसके बाद फिर विबाह होता है। तो इससे रजस्वलाके बाद बिबाह होना और भी पुष्ट प्रमाणित हुआ। इसमें बिबाह बिधिसे पुनः बिबाह करना लिखा गया है। इससे मालूम होता है कि, पिताके रहने पर ही गांधर्व-बिबाह होता है।

ऋतुमती कन्याओंके बिबाहका प्रमाण और भी सुनियेः—

"योऽकामां दूषयेत् कन्यां स सद्यो वधमर्हति।
स कामां दूषयँस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः॥"

(मनु० ८-३६४)

अर्थात् जो अनिच्छो रखनेवाली कन्यासे बिजातीय पुरुष व्यभिचार करे तो उसे प्राणदण्ड मिलना चाहिये। (इच्छन्तीं पुनर्गच्छन् बधार्हो मनुष्यो न भवति। कुल्लूक भट्टः मनु ८-३६४) अर्थात् पुरुष संयोगकी इच्छा करने वाली कन्यासे तुल्य जातिका पुरुष मैथन करे तो उसको प्राणदण्ड न दिया जाय।

"कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किंचिदपि दापयेत्।
जघन्यं सेवमानांतु संयतां वासयेद्गृहे॥" (मनु० ८-३६५)

अर्थात् कन्या यदि उच्च जातिके पुरुषसे सम्भोग करे तो उसके लिये कोई दण्ड नहीं है। यदि वह इच्छा पूर्वक नीच जातिके पुरुषसे व्यभिचार करे तो उसको यत्नसे घरमें रक्खे।

"उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति।
शुल्कं दद्यात्सेवमानः समा मिच्छे त्पिता यदि॥" (मनु० ८-३६६)

अर्थात् उत्तम जातिकी कन्यासे यदि नीच जातिका पुरुष सम्भोग करे तो उनको प्राणदण्ड दिया जाय। यदि तुल्य जाति वाला पुरुष कन्यासे भोग करे तो कन्याके पिताको कुछ दे देवे। (कुल्लूक भट्ट लिखते हैं कि उस कन्याका बिबाह उसी पुरुषसे कर दिया जाय।) इससे भी तो रजस्वलाका बिबाह होना सिद्ध हो गया। यह श्लोक भी कन्याके इच्छा व्यभिचारके लिये ही है। स्वेच्छा व्यभिचार करने करानेके लिये ही ही यह दण्ड-बिधान है। अंगुलीसे कन्या दूषित करनेके लिये यह दण्ड नहीं है, उसके लिये मनु० ८-३६७ में दण्ड कहा गया है।

महर्षि याज्ञबल्क्यजीने भी प्रायश्चित्ताध्याय प्रकरण ५ में लिखा है—"सखिभार्य्या कुमारीषु" (२३१) "गच्छंस्तु गुरुतल्पगः" (२३२) अर्थात् मित्रकी स्त्री तथा कुमारी कन्यासे बलात्कारेण व्यभिचार करे तो गुरुतल्पका प्रायश्चित्त करे। फिर उसी जगह "सकामायाः स्त्रियामपि" (२३३) अर्थात् मित्रकी स्त्री तथा कुमारी कन्या इत्यादि स्त्रियां यदि इच्छा पूर्वक पुरुष संयोग करें तो

इन लोगोंको पुरुष ही का दण्ड दिया जाय। अंगुलीसे दूषित करनेके लिये २३८ श्लोकमें दण्ड कहा है, यह प्रायश्चित्त भी इच्छापूर्वक व्यभिचार ही के लिये कहा गया है।

ये सब दण्ड अविवाहिता ऋतुमती कन्याओंके इच्छ या व्यभिचार के लिये लिखे गये हैं। यदि ऋतुकालके पहिले मनुजो तथा याज्ञवल्क्य जो बिवाह चाहते तो ये ऋतुमती कन्यायें कहां मिलतीं जो व्यभिचार करातीं, जिसका कि इन महर्षियोंने दण्ड विधान लिखा है ?

यदि कहिये कि ऋतुकालके पूर्व बिवाह करनेकी मनुजीकी आज्ञा थी, परंतु लोग मानते नहीं थे, तो उस आज्ञाके न मानने वालोंको मनुजीने कहीं भी दण्डका बिधान नहीं लिखा है। इससे सिद्ध हुआ कि वे ऋतुमती कन्याओंका ही बिबाह धर्मसंगत समझते थे।

यदि कहिये कि व्यभिचार कराने वाली कन्यायें ऋतुमती नहीं थीं, तो यह बात असम्भव तथा वैद्यक बिरुद्ध है, क्योंकि सुश्रुतमें लिखा है कि, "नरकामां प्रियकथाम्-विद्यादृतुतोमिति" (सु० शारी ७ ३-४) अर्थात् जिस स्त्रीको पुरुष सहबासकी इच्छा हो तथा पुरुषोंकी कथा अच्छी लगे उसे समझना चाहिये कि यह ऋतुमती हो गई है।

इससे यह भी सिद्ध हो गया कि बिना रजस्वलाके स्त्रियोंको पुरुषेच्छा नहीं होती। यदि उन्होंने इच्छा पूर्वक व्यभिचार किया तो समझना चाहिये कि वे कन्यायें रजस्वला थीं और रजस्वलाओंको ब्रह्मचर्य्य कराके बिबाह कराना मनुजो तथा याज्ञवल्क्यजीको इष्ट था।

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।
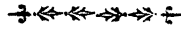
पितुर्गेहेतु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
भ्रूण हत्या पितुस्तस्या सा कन्या वृषली स्मृता ॥

(बृ० स्मृ० यम० अ० ३-१८)

यदि सा दातृ वैकल्याद्रजः पश्येत्कुमारिका ।
भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रदः ॥ (व्यास० अ० २-२७)

अर्थात् पिताके घरमें यदि अविवाहिता कन्या रजस्वला होजाय तो उसके पिताको भ्रूण हत्याका पाप लगता है और वह कन्या शूद्रा होजाती है ।

इन श्लोकों तथा और बहुतसे श्लोकोंमें यह दिखलाया गया है कि ऋतुकालके पूर्वही बिबाह न करनेसे भ्रूण-हत्याका पाप लगता है । क्योंकि ऋतुकालके पूर्वही बिबाह होनेसे ऋतुकाल व्यर्थ नहीं जायगा, बरन् प्रथम ऋतुस्नानोत्तर गर्भकी स्थिति होगी । तभी तो ऋतुकालोत्तर बिबाह करनेसे बहुतसे ऋतुकाल व्यर्थ होनेके कारण बिपक्षी लोग गर्भ हत्याका पाप लगाते हैं ।

बिरोधियोंकी पूर्वोक्त बातें मनुजी तथा याज्ञवल्क्यजी तथा वैद्यक शास्त्रके भी बिरुद्ध है । क्योंकि—

स्त्रीपुंसयोस्तु संयोगे विशुद्धे शुक्रशोणिते ।
पंच धातून्स्वयं पष्ठः आदत्ते युगपत्प्रभुः ॥

(याज्ञवल्क्य प्रायश्चित्ताध्याय धर्म प्रकरण ५४ श्लोक ७२)

अर्थात् रज बीर्य्यके शुद्ध होनेपर स्त्री-पुरुष संयोगसे जगत्का

स्वामी आत्मा पंच धातुओंको स्वीकार करता है (याने गर्भमें आ-जाता है।)

इससे मालूम पड़ता है कि रज बीर्य्य जब शुद्ध होजाता है तभी गर्भ स्थित होता है। "एवमदुष्ट शुक्रः शुद्धार्तवाच" (सु० शा० २-२१) अर्थात् शुद्ध रज बीर्य वालेही संतान उत्पन्न कर सकते हैं। जिसकी शुद्धताका लक्षण "स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च। शुक्र मिच्छन्तिकेचित्तु" इत्यादि (सु० शा० २-१३) अर्थात् स्फटिक मणिकी भांति चमकदार, द्रव न बहुत पतला, न जमाहुआ, चिकना, मीठा जिसमें मधुको गंध आती हो, ऐसा बीर्य्य शुद्ध समझा जाता है। तथा "ससासृक् प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरज्यते॥" (सु० शा० २-१४) अर्थात्—जो खरगोशके रक्तके समान या लाख (लाह) के रंगके समान लाल हो, जिसका दाग कपड़ेपर न पड़े, ऐसा रज (स्त्री बीर्य) शुद्ध समझा जाता है। परंतु इसकी शुद्धि तभी होती है जब २०-२५वर्ष तक पुरुष तथा १६वर्ष तक स्त्री ब्रह्मचर्य करे। यद्यपि पुरुषोंको ३६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य करना मनुजोने लिखा है। तबभी आजकल दीर्घकालके ब्रह्मचर्यका निषेध होनेसे "तदर्धं पादिकं वाग्रहणांतिक मेव च" (मनु० ३-१) के अनु-सार उसका आधा या चौथाई अथवा वेद-ग्रहण कालतक (जबतक वेद न पढ़ ले तबतक) ब्रह्मचर्य करे। मनुजीके इस बचनानुसार न्यून ब्रह्मचर्य भी पुरुष कर सकते हैं। अर्थात् कमसे कम २० वर्ष तक ब्रह्मचर्य करे तथा स्त्रियोंको भी वेदानुसार ब्रह्मचर्य करनेका अधिकार है—"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं बिंदते पतिम्" (अथर्व वेद) कन्या

ब्रह्मचर्य करके युवा पतिसे बिबाह करे। इससे कन्याओंका भी ब्रह्म-चर्य सिद्ध हुआ, जिसके लिये मनुजीने लिखा है कि—

"एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।

कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति ब्रह्ममात्मनः॥" (मनु० २-१८)

अर्थात् जिसको ब्रह्मचर्य करना हो वह सर्वत्र अकेला सोवे और किसी प्रकारभी बीर्य न गिरावे, यदि कामवश बीर्य नाश होगा तो ब्रह्मचर्य नष्ट होजाना है।

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे ब्रह्मचर्य करनेके लिये स्त्रियोंको भी चाहिये कि अकेले सोवें और किसी प्रकारसे बीर्य नाश न करें। बिबाह होने पर वे पूर्वोक्त विधिसे ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकतीं। अतएव बिबाह न करके स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य पालन करें। तब रज बीर्य शुद्ध होनेपर गर्भ रहता है और बिना ब्रह्मचर्यके थोड़ी अवस्थामें रज बीर्य शुद्ध नहीं होता। अतः गर्भको स्थिति नहीं होती। जब अशरीरिक रज बीर्यके कारण छोटी अवस्थामें गर्भ नहीं रहता तो उस अवस्थामें बिबाह न करनेसे गर्भ हत्याका पापही कैसे लगेगा? इसलिये सुश्रुतमें लिखा है कि—

"पंच विंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे

समत्वागत वीर्य्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥"

अर्थात्—२५ बर्षमें पुरुष पूर्ण बीर्य युक्त होता है और १६ वें बर्षमें स्त्री पूर्ण बीर्य (रज) युक्त होती हैं, ऐसा वैद्योंको समझना चाहिये। जैसे—

"ऊन षोडश वर्षायामप्राप्तः पंच विंशतिम्।

यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सबिपद्यते॥

जातोवा न चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥"

(सु० शा० १०-४७-४८)

अर्थात् १६ वर्षके कमकी स्त्रीमें २५ वर्षसे कमकी अवस्थाका पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो गर्भही नहीं ठहरता। यदि गर्भ ठहर भी जाता है तो पैदा होनेके बाद नष्ट होजाता है। यदि बालक पैदा होकर नष्ट न हुआ तो दुर्बलेंद्रिय होके जीता है और अल्पायु होता है। (ऐसे गर्भही से क्या लाभ) अतएव अल्पावस्थाकी कन्याओंमें गर्भाधान न करना चाहिये।

इन प्रमाणोंके होते हुए लोग न मालूम क्यों अल्पावस्थाही में बिवाह और गर्भाधान शास्त्र सम्मत मानते हैं और न करनेसे गर्भहत्या का दोष लगाते हैं ?

बाग्भट्टजीने भी लिखा है—

"पूर्णा षोडशवर्षा स्त्री पूर्णा विंशेन संगता।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि॥ ९
बीर्यवन्तं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
रोग्यल्पायुरधनो गर्भो भवति नैव वा॥ १०

(बाग्भट्ट शारीर स्थानम्)

अर्थात् पूर्ण १६ बर्षकी स्त्रीका गर्भाशय तथा रक्त (रज) शुद्ध होजाता है। तब बायुभी गर्भ ग्रहण कराने योग्य होजाता है। हृदय ही से रक्तका संचार होता है उसी समय हृदय शुद्ध होनेके कारण स्त्रियोंका रक्त (रज) शुद्ध होता है। इसी प्रकारकी शुद्ध रजोवती स्त्री से पूर्ण २० बर्षका पुरुष गर्भाधान करे। क्योंकि उस समय पुरुषका

पठन्ति" अर्थात् बहुतसे रोग संचारी होते हैं ऐसा वैद्यकमें लिखा है। उसी जगह फिर शंका की गई है कि "अथा वेदमूलं कथमिदं प्रमाणम्" अर्थात् वैद्यकका प्रमाण वेद प्रमाण नहीं है तो कैसे उसका प्रमाण माना जाय? इसके उत्तरमें लिखा है कि "दृष्टार्थनरैव प्रामाण्य सम्भवात्" अर्थात् वैद्यककी बातें दृष्टार्थ हैं, (याने प्रत्यक्ष हैं), इसलिये उनका प्रमाण मानना चाहिये। तदुक्तं भविष्य पुराणे "सर्वाए। वेद मूला दृष्टार्थाः परिहृत्यतु" अर्थात् जो प्रत्यक्ष नहीं है उनके लिये वेदोंका प्रमाण मानना अवश्यक है और जो प्रत्तक्ष हैं उनके लिये वेदोंके प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। मीमांसा भाष्यकारेणापि स्मृत्यधिकरणे ऽभिहितम् "ये दृष्टार्थास्तेषु तत्प्रमाणम् ये त्वदृष्टार्थास्तेषु वैदिक शब्दानुशासनम्" अर्थात् जो दृष्टार्थ (प्रत्यक्ष) हैं उनके लिये प्रत्यक्ष ही प्रमाण हैं, जो प्रत्यक्ष नहीं हैं उनके लिये वैदिक-प्रमाण आवश्यक है। इन प्रमाणोंमे कुल्लूक भट्टने लिखा है कि वैद्यक दृष्टार्थ है, और है भी दृष्टार्थ (प्रत्यक्ष)

इस बातको सभी प्रत्यक्षवादी जानते हैं कि अल्पावस्थामें गर्भ नहीं रहता तथा उस समय सहवास करनेसे गर्भाशय बिगड़ जाता है, तो वैद्यकके अनुसार १६ वर्षसे कमकी स्त्रियोंमें २० वर्षसे कमके पुरुषोंका गर्भाधान न करना चाहिये। (क्योंकि उस अवस्थामें गर्भ स्थिति नहीं होतीं यदि होती भी है तो उसके फल अच्छे नहीं होते।

उपरोक्त प्रमाणों तथा कारणोंके होते हुए भी बाल्यावस्थामें बिवाह न करनेसे विपक्षियोंका भ्रूणहत्याका पाप लगाना सर्वथा असंगत और असत्य है। हाँ! यदि वे यह कहें कि बिवाह अल्पावस्थामें

हो और समागम १६ वर्ष को अवस्थामें हो तो यह भी सर्वथा असम्भव है। भला अधिक अवस्था वाले पुरुष अल्पावस्थाकी कन्यासे बिवाह करके उसे कब ब्रह्मचारिणी रहने देंगे ? अवश्य उसका गर्भाशय दूषित करके उसके जीवनको वे नष्ट कर देंगे (जैसा कि बहुत हुआ है और आगामी फाल्गुन मास तक होगा) कम अवस्थाके पुरुषोंसे तो कन्याओंके जीवनकी कुछ आशा भी की जाती है, परंतु ३० या ४० या ४५ वर्षोंके पुरुषोंसे अबोध या नग्निका बालिकाओंके जीवनकी क्या आशा की जा सकती है ? जब कि आप लोग वृद्ध बिवाहोंका भी समर्थन कर रहे हैं। फिर क्यों नहीं कन्याओंका रज तथा गर्भाशय दूषित होगा ? (आजकल इस बीमारीकी विशेषता होनेका यही मुख्य कारण है)

प्रायश्चित्ताध्याय ७५ तथा ७८ श्लोकके मिताक्षरामें बहुतसे सुश्रुतके प्रमाण लिखे गये हैं, जो मूलमें नहीं हैं और दृष्टार्थ होनेके कारण वैद्यक ही का प्रमाण मिताक्षराकारने भी माना है। इन प्रमाणोंसे वैद्यकका प्रमाण ठीक समझके १६ वर्षसे कम अवस्थाकी स्त्री तथा २० वर्षसे कम अवस्थाका पुरुष कदापि गर्भाधान न करे। नहीं तो कालान्तरमेंभी कभी रजवीर्य्य शुद्ध नहीं होगा। जिस प्रकारसे कच्चे फलोंका बीज बोनेसे नहीं उगता, उसी प्रकारसे कच्चे रजवीर्य्यसे संतान कदापि नहीं उत्पन्न होगी। यदि हुगी भी तो उपरोक्त कथनानुसार दूषित तथा निर्बल नपुंसक, जैसा कि सुश्रुतने लिखा है—"पित्रोरत्यल्प बीर्य्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत्। स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥" (सु० शारी० २-३४) अर्थात् माता-पिता

के अशुद्ध अपरिपक्क रजवीर्य्यसे आसेक्य नामक नपुंसक उत्पन्न होते हैं। जिन्हें "मुख-योनि" भी कहते हैं। ये जब दूसरेका वीर्य्यपान करते हैं तो इनकी इन्द्रियमें उत्तेजना प्राप्त होती है परंतु इनसे सन्तान नहीं उत्पन्न हो सकती। फिर न जाने क्यों बाल-विवाहके समर्थक अपरिपक्क रजवीर्य्योंसे नपुंसक संतान उत्पन्न करनेका उपाय बतलाकर सृष्टिका नाश करा रहे हैं एवं उसके नाश होनेसे श्रौत स्मार्त कर्मोंके लुप्त होनेका पाप लाद रहे हैं?

"प्रजनार्थं महाभागाः" मनु० ९-२६ के तथा और भी बहुतसे ऐसे प्रमाण हैं कि जिससे संतानके लिये विवाह करना सिद्ध होता है। जब संतान पैदा करनेको योग्यता स्त्री-पुरुषोंमें हो तभी विवाह होना आवश्यक होता है। उसके प्रथम कदापि विवाह न होना चाहिये।

"ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदार निरतः सदा" (मनु० ३-४५) अर्थात् ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे गमन करे "ऋतौ भार्य्यामुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्ध वर्ज्जम्" अर्थात् पर्व इत्यादि (वर्जितकाल) को छोड़ कर ऋतुकालमें स्त्रीसे गमन करना चाहिये "तामदुह्य यथर्तु प्रवेशनम्" (पारा० गृह्यसूत्र १ कां० ११ कं० ७ सूत्र) अर्थात् गर्भ-ग्रहण योग्य-काल होने पर पूर्वोक्त प्रकारसे उसका विवाह करके ऋतु-कालमें गमन करना चाहिये।

इन प्रमाणोंसे ऋतुकाल (स्नानोत्तर) में गमन करना प्राप्त हुआ है और उस समय पर गमन न करनेसे पाराशरजीने पाप लगाया है तथा च—

"ऋतुस्नातांतु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥"

अर्थात् जो ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे गमन नहीं करता उसको घोर भ्रूणहत्याका पाप लगता है। यदि गर्भग्रहण योग्य रज न हो तो गमन न करनेसे पाप नहीं लगता! इसीलिये उक्त गृह्यसूत्रके भाष्यमें गदाधराचार्य्यजीने मदनरत्नके वाक्यको पाराशरजीके अपवादके लिये लिखा है—"बन्ध्यां वृद्धामसद्वृत्तां मृतापत्यामपुष्पिणम्। कन्यां च बहु पुत्रां च वर्जयन्मुच्यते भयात्॥" अर्थात् बन्ध्या, वृद्धा, रोगिणी, जिसका पुत्र मरा हो, जिसके गर्भोत्पादक पुष्प न हो, कन्या तथा अधिक पुत्रों वाली इत्यादि स्त्रियोंके पास ऋतुकालमें न जानेसे भ्रूणहत्याका पाप नहीं लगता। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि, जिसका रज गर्भग्रहण करने योग्य न हो उससे ऋतुकालमें गमन न करना चाहिये। तो क्यों गर्भग्रहण करानेके लिये कन्याका बिवाह न करने पर भ्रूणहत्याका पाप लगाया जाता है। उससे तो ऋतुकालमें गमन ही का निषेध है। तो क्यों भ्रूणहत्याके भयसे कन्याओंका बिवाह करनेकी आज्ञा दी जाती है और जब कन्या ऋतुमती थी तभी तो उससे गमन करना प्राप्त हुआ जिसके ऋतुस्नानोत्तर गमनका निषेध किया जाता है वह रजस्वला अविवाहिता थी तभी कन्या कही गई है। अविवाहिता ऋतुमतियोंको तो कन्या कहा ही जाता है, जैसा कि मनु भगवान्ने लिखा है "गृहे कन्यर्तुमत्यपि" (६-८६) "कन्यांमृतुमतीं शुद्धाम्" (निर्णय सिंधु० कन्या रजोदर्शन प्रकरण) और अविवाहिता ऋतुमती कन्याओंके गमनका निषेध

उसके बिबाहके लिये लिखा गया है। अर्थात् गर्भाधानके लिये अपरिपक्व (अशुद्ध) रजकालमें कन्याओंका बिबाह न करनेसे पाप नहीं लगता। (क्योंकि १६ बर्षके प्रथम अशुद्ध रज रहता है तो उससे भ्रूण स्थिति ही नहीं होती) तो भ्रूणहत्याका पाप कैसे लगेगा। जब ऋतुकालमें कन्यासे गमन करनेका निषेध है तो अपरिपक्व रज-कालमें बिबाह करना अनुचित है।

इन बातोंसे यह प्रतिपादित होता है कि रजस्वला होनेके बाद रजः शुद्ध समयमें बिबाह करके ऋतुकालमें गमन न करे तो भ्रूणहत्या का पाप लगता है। गर्भाधान योग्य समयके पहिले गमन न करनेसे भ्रूणहत्याका पाप नहीं लगता। इससे भ्रूणहत्याके भयसे छोटी अवस्थामें कन्याओंका बिबाह न करना चाहिये। अतएव १५ या १६ बर्षकी कन्याका बिबाह २० बर्षके पुरुषके साथ करनेसे गर्भ स्थिति होने पर आयुष्मान् बीर्य्यवान् संतान उत्पन्न होकर लौकिक वैदिक कार्य्योंकी उन्नति कर सकता है।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः।

कुछ लोगोंका कहना है कि बालकालमें बिबाह होनेसे कोमल बुद्धि के कारण दाम्पत्य प्रेम सुदृढ़ होजाता है। परन्तु यह उन लोगोंका नितांत भ्रम मात्र है। क्योंकि वे अबोध बालक बालिकायें दाम्पत्य प्रेमके महत्वको क्या समझेंगे ? उनको दाम्पत्य प्रेमका ज्ञान कहाँ है जब

तक उनमें रज-वीर्य्यका प्रादुर्भाव नहीं होता तबतक वे दाम्पत्य प्रेमको क्या समझ सकेंगे ? बल्कि रज-वीर्य्यके प्रादुर्भाव होनेपर भी उनको दाम्यपत्य प्रेमसे बचाकर पूर्ण अवधि तक ब्रह्मचर्य्य कराना चाहिये। इस दशामें कामोद्दीपक बातोंसे ब्रह्मचर्य्य नष्ट होजाता है। इसलिये बालक तथा बालिकाओंको भ्रष्ट-शिक्षा न देकर पवित्र-शिक्षा देना परमोचित है। उपन्यास आदिक प्रेम कथाओंको न पढ़ाकर ब्रह्मचारिणी देवियोंको सावित्री, सीता, सती तथा पार्वतीका जीवन चरित्रही पढ़ाना उचित है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य पूर्ण होने पर युवती कन्याओंका युवा पुरुषोंके साथ विवाह होनेसे ही दाम्पत्य प्रेम सुदृढ़ हो सकता है।

कुछ लोगका कहना है कि "धर्म" जंजीरमें बँध गया। अब धार्मिक कार्य्योंमें भी हमलोग परतंत्र* होगये। उन लोगोंका यह कहना सर्वथा अनुचित है। क्योंकि बालक तथा बालिकाओंकी शिक्षा, ब्रह्मचर्य तथा कन्यादान आदिकका प्रबंध राजाही का करना चाहिये। इसलिये मनुजीने लिखा है कि, "कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्।" (मनु० ७-१५२) अर्थात् कन्याओं तथा कुमारोंके रक्षण तथा कन्यादानकी भी चिंता राजाको करनी चाहिये। जिससे कन्यादान कन्याओंको योग्यावस्था में हो। तथा महाभारतमें भी लिखा गया है कि धार्मिक विषयमें राजदण्ड होनेसे धर्म स्थिर होता है। जैसे—

* इससे भला कौनसी परतंत्रता होगई ? हाँ एक मासकी कन्याओंके विवाहकी स्वतंत्रता अवश्य छिन गई और उसका छिन जाना अनुचितभी नहीं हुआ। परन्तु धनाढ्य वृद्धोंकी षोडशी बालाओंसे विवाह करनेकी स्वतंत्रा तो नहीं छिन गई। देखें परमात्मा तथा राजा इसपर कब ध्यान देते हैं।

"यदा निवर्तते पापो दण्ड नीत्या महात्मभिः।
तदा धर्मो न चलते सद्भूतः शाश्वतः परः॥"

(भारत० शांति प० ६५-२७)

अर्थात् जब श्रेष्ठ अथवा न्यायकारी पुरुष द्वारा दण्डसे पापकी निवृत्ति होती है तब सच्चा और सर्वदा रहने वाला धर्मभी नहीं विचलित होता। इससे ज्ञात होता है कि धार्मिक-कार्य्योंमें भी उसकी स्थिरताके लिये राज-नियमका होना अत्यंत आवश्यक है।

इन प्रमाणोंसे बिवाह इत्यादि धार्मिक कार्य्योंमें भी राजाज्ञा आवश्यक होनेसे "सारडा-विधान" सनातन धर्मानुकूल ठहरा; इसके पहिले बिबाहके लिये जब कोई राजदण्ड तथा कानून नहीं था तभी तो एक मासकी बहुतसी बिधवा कन्यायें भाग्यको कोसती हुई भारतबर्ष की छातीपर बोझसी पड़ी अपने करुणा-क्रंदनसे हिंदू धर्मका स्वागत कर रही हैं। जिन्होंने अपने पतिदेवका मुख तक नहीं देखा है ऐसी एक माससे लेकर १५ बर्ष तककी अल्पावस्थाकी ३३५०१५ तीन लाख पैंतिस हज़ार, पंद्रह बाल बिधवायें * अपने आँसुओंकी धारासे बाल बिबाह के समर्थक धर्म प्रवर्त्तककोंके चरण-कमलोंको प्रक्षालन करती हुई किसी तरह देशमें पड़ी हैं, जिनमें बहुतसी बिधबायें कामवासनाकी प्रेरणासे बिधर्मियोंके हाथ पड़ हिंदू-धर्मका गौरव नष्ट कर रही हैं। हाय! तबभी बाल-बिबाहके समर्थकोंको ज़राभी दया नहीं आती। दया आनातो दूर रहा, वे अबभी शास्त्र निषिद्ध बाल बिबाहके लिये जान देरहेहैं।

---

* इसके अतिरिक्त १५ बर्षसे अधिक अवस्थाकी बहुतसी बिधवायें देशमें दुःख भोग रही हैं।

अब "सारडा विधान" के कारण एक माससे १४ बर्ष तककी कन्याओंको विधवा नहीं दिखलाई पड़ेंगी और न अल्पावस्थामें डिम्भकोष आदिकके टूटनेसे गर्भाशयही बिगड़ेगा न तो वंशोच्छेदका ही डर रहेगा।

अब कोईभी पुरुष अपनी कन्याका बिवाह १४ बर्षकी अबस्थाके नीचे नहीं कर सकेगा, जिससे १५ बर्षीया युवती कन्यायें अपने १८ बर्षके युवापतिके साथ कुछ दिन तकतो युवावस्थाके सुखका अनुभव करेंगी।

इस कानूनके पहिले १ बर्षसे १० बर्ष तकके अवस्था वाले बिवाहित बालकोंकी संख्या।

१ बर्षसे लेकर २ बर्षके बिबाहित बालकोंकी संख्या २६८७ की है।
२ बर्षसे लेकर ३ बर्षके बिबाहित बालकोंकी संख्या १६४८४ की है।

३	"	४	"	"	२८६१५
४	"	५	"	"	५१६७७
५	"	१०	"	"	७५७८०५
१	"	१०	"	"	८५७५६८

बहुधा ऐसा देखा गया है कि उपरोक्त अल्पावस्थाके बालकोंके साथ १०, १२ बर्षको कन्याओंका बिवाह होजाता था। इसका परिणाम यह होता था कि ५-६ बर्षके बादही कन्याओंकी पूर्ण जवानी आजाती थी। उस समय वे केवल १५-१६ बर्षके बालक पतिके साथ अपने सुखमय जीवनकी तिलांजलि दे अपने भाग्य तथा माता-पिताको कोसती

हुई अपने पतिको जन्म भरके लिये बोर्यहीन कर राजयक्ष्मा आदिक रोगोंका पाहुन बना देती थीं। तथा बहुतसी स्त्रियाँ अपनी कामवेदना को न सह सकनेके कारण व्यभिचारमें प्रवृत्ति हो मान-मर्यादाका सत्यानाश कर देती थीं और उनकी अवस्था ढल जानेपर उनके पतिदेव जब अपनी जवानीमें पदार्पण करते थे तो उनका चित्त अपनी बिवाहिता वयोगता स्त्रीसे विरक्त हो युवती परस्त्री विषयक व्यभिचारमें अनुरक्त होता था।

इस समय तक इन्हीं गुप्त व्यभिचारोंने भारत वर्षमें हाहाकार मचा रक्खा है और अधिक अवस्था वाले पुरुषोंको भी अल्प वयस्का कन्यायें मिलती थीं, जिससे इन बालिकाओंको भी वही पूर्वोक्त दशा होती थी। इस अत्याचारके दमनार्थ कोई कानून भी नहीं बनाया गया था। कमसे कम देशका इतना उपकार इस कानूनके द्वारा अवश्य होगा कि, किसी युवती बालाको बालक पति तथा किसीके युवा होनेपर अपनी स्त्री वृद्धा तो नहीं मिलेगी। परंतु वृद्धोंको अपनी सम्पत्तिके कारण युवती बाला तो मिलनेमें कोई कानूनी आपत्ति नहीं रहेगी, जो महान अनर्थका घर है।

प्रायः सभी योग्य वैद्य तथा डाक्टर आदि इस बातको भली भाँति जानते हैं कि बालकोंकी अधिक मृत्यु होती है तथा वीर्य्य प्रादुर्भावके पूर्व जितनी ही अल्पावस्था रहती है, उतना ही शरीर निर्बल रहता है। शरीर निर्बल होनेके कारण रोगकी पीड़ा तथा उपद्रव सहन करनेकी शक्ति नहीं रहती। जिससे भयङ्कर रोगोंसे अल्पावस्थाके बहुतसे बालकोंकी मृत्यु हो जाती है। इससे उन विवाहित बालकोंके कारण

बाल-विधवाओंकी संख्या भी उत्तरोत्तर बढती जाती है, उनकी संख्या का विवरण—

१ वर्षसे कम अवस्थाकी विधवा कन्याओंकी संख्या							१०१४
१	वर्षसे	लेकर	२	वर्षोको	...कन्यायें		८५६
२	”	”	३	”	”	”	१८०७
३	”	”	४	”	”	”	४७५३
४	”	”	५	”	”	”	६२७३
५	”	”	१०	”	”	”	९४२७०
१०	”	”	१५	”	”	”	२२३०४२
							३३५०१५

जब प्रादुर्भाव होनेके बाद वीर्य कुछ दिनोंमें पुष्ट हो जाता है तब शरीर भी बलवान् होकर भयङ्कर रोगोंके सहन शक्तिको प्राप्त कर लेता है। जिससे मृत्युकी संख्या भी कम हो जाती है। जब मृत्युकी संख्यामें कमी हुई तो विधवाओंकी संख्या भी अवश्य घट जायगी। अतएव बालविवाह [illegible]षेध करके युवा विवाह करानेके लिये यह कानून अत्यन्त ही उपयोगी हुआ।

कुछ लोगोंका कहना है कि, “सारडा-विधान” से गुप्त व्यभिचार बढ़ेगा और विवाहके पूर्व ही कन्यायें गर्भवती हो जाया करेंगी। परंतु उपरोक्त वैद्यकके अनुसार छोटी अवस्थामें कन्यायें गर्भ ही नहीं धारण करेंगी। दूसरे यह कि गर्भ रह जानेके भयसे कन्या[illegible] व्यभिचार भी न करायेंगी। इस विधानके पास होनेके पूर्व विवाहित बालिकायें

व्यभिचार करा लेती थीं, इस विचारसे कि यदि गर्भ रह जायगा तो पति ही का समझा जायगा, चाहे वह बालक हो या वृद्ध हो। परंतु अब तो गर्भके भयसे विवश हो १४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्यका पालन करना ही पड़ेगा।

योग शास्त्रका मत है कि, जिस अवस्थामें मनुष्यका प्रथम बार वीर्य्य निकलता है उसकी ठीक चौगुनी अवस्थामें उस मनुष्यकी मृत्यु होती है। तो न जाने विपक्षी लोग क्यों अकालमृत्युकी संख्या बढ़ानेके लिये बाल-विवाहका समर्थन करके ब्रह्मचर्य्यका नाश कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य्यसे स्त्री तथा पुरुष दोनोंको वृद्धावस्था शीघ्र नहीं आती। इसके अनेक प्रमाण हैं। इस कारण दोनोंका ब्रह्मचर्य्य करना परमावश्यक है।

इस देशका ब्रह्मचर्य्य यहाँके धर्मनेताओंके कारण संसार भरमें प्रसिद्ध था। हाय! आज यहाँ उसी ब्रह्मचर्य्यके लिये इतने विरोध हो रहे हैं। धन्य हैं आजके धर्म प्रवर्तक लोग जिन्हें धर्मकी हानि-लाभ का कुछ भी ज्ञान नहीं है।

यदि भ्रूणहत्या या व्यभिचारके भयसे रजस्वला होनेके प्रथम विवाहकी सम्मति दी जाती है, तो भ्रूणहत्या तथा व्यभिचारके भयसे विधवा-विवाहकी क्यों नहीं आज्ञा दी जाती? विधवायें तो अधिक व्यभिचार या गर्भपात करा रही हैं। फिर उनका विवाह क्यों नहीं कराते? यदि पतिव्रतधर्म पालन करानेके लिये विधवाओंको ब्रह्मचर्य्य करना चाहिये, तो पातिव्रतधर्म पालन करनेके लिये अविवाहिता ऋतु-मती कन्याओंको भी ब्रह्मचर्य्य करना उचित है। (जैसा कि अविवा-

हिता कन्यायें करती हैं) यदि कहिये कि अविबाहिता कन्याओंको तो पति ही नहीं हैं, तो वे क्या पतिव्रतधर्म पालन करेंगी ? इस बिचार से विधबाओंको भी तो पति नहीं हैं। यदि कहिये कि बिधबाओंको अपने मृत पतिकी आत्माके सुखके लिये ब्रह्मचर्य्या करना चाहिये, तो अबिबाहिता कन्याओंके पतिकी भी आत्मा संसारमें वर्तमान है। अस्तु उसके सुखार्थ कुमारी ऋतुमती कन्याओंको भी ब्रह्मचर्य्या करना परमावश्यक है। अतएव व्यभिचार या भ्रूणहत्याके भयसे कन्याओंका बिबाह अल्पावस्थामें करके उनका ब्रह्मचर्य्य न नष्ट करना चाहिये।

बारह बर्षसे लेकर २० बर्षसे अधिक अवस्थाकी साढ़े पाँच लाख ब्राह्मण कन्याओंके तथा इसी प्रकार बहु संख्यामें क्षत्रिय कन्याओंके रजस्वला होनेपर अबिबाहिता रहनेसे ज्ञात होता है कि रजस्वलाओं का बिबाह संसारमें जोरोंसे होता है। इससे मालूम होता है कि "सारडा-बिधान" कोई नई बात नहीं है, न मालूम इसका लोग क्यों बिरोध कर रहे हैं ?

अतः सभी छान-बीन करनेसे प्रकट हुआ कि कन्याओंका बिबाह काल १६ बर्षकी अवस्थामें ही होना धर्मानुकूल, वेद, शास्त्र तथा लोकमतसे सिद्ध है।

बाल-विवाह-निषेधक कानून सारडा एक्ट का स्वरूप।

(१) (क) यह कानून सन् १९२९ ई० का बाल-बिवाह निषेधक कानून कहलायेगा।

(ख) यह समस्त बृटिश-भारतपर (देशी राज्योंको छोड़कर) मय बृटिश-बलूचिस्तान और संताल परगनेके लागू होगा

(ग) यह क़ानून १ अप्रैल, सन् १९३० ई० से काममें लाया जायगा।

(२) इस क़ानून में—

(क) "बाल" का अभिप्राय १८ बर्षसे कम उमर वाले बालक और १४ बर्षसे कम उमर वाली कन्यासे है।

(ख) "नाबालिग़" का अभिप्राय १८ बर्षसे कम उमर वाले बालक या कन्यासे है।

(३) १८ बर्षसे अधिक और २१ बर्षसे कम अवस्थाका कोई पुरुष यदि किसी १४ बर्षसे कम उमरकी कन्यासे बिबाह करेगा, तो उसपर एक हज़ार रुपये तकका जुरमाना होसकेगा।

(४) २१ बर्षसे अधिक अवस्था वाला कोई पुरुष यदि किसी बालिका से बिबाह करेगा, तो उसे एक महीने तक सादी क़ैद या एक हज़ार रुपये तक जुरमाना या दोनों सज़ायें एक साथ दी जा सकेंगी।

(५) यदि कोई व्यक्ति बाल-बिबाह करावेगा (पुरोहित आदि) या करनेकी आज्ञा देगा -- (वर-कन्याके माता-पिता, संरक्षक आदि) तो उसे एक महीने तककी सादी क़ैद या एक हज़ार रुपये तक जुरमाना, या दोनों सज़ायें साथ साथ दी जासकेंगी। किंतु यदि अभियुक्त यह प्रमाणितकर सके कि, उसे इस बातका कोई ज्ञान न न था कि यह बाल-बिबाह है, तो वह दोष-मुक्त र दिया जायग

(६) (क) कोई नाबालिग़ व्यक्ति य द बाल-बिवाह करेगा और उस के माता-पि ा या अभिभावक, जिनकी देख-रेखमें वह व्यक्ति हो, उस बिबाहको रोकनेमें अपने कर्त्तव्यकी अवहेलना करेंगे या उस बिबाहको रोकनेको आज्ञा न देंगे, तो उन्हें एक मास तककी सादी क़ैद या एक हज़ार रुपये तक जुरमाना या दोनों सज़ायें एक साथही दी जासकेंगी। स्त्रियोंको क़ैदकी सज़ा नहीं दी जासकेगी।

(ख) बाल बिबाह कराने वाले व्यक्तिके माता-पिता या अभिभावककी ओरसे यदि प्रमाण न दिया जा सकेगा तो इस प्रकारसे मुकद्दमोंमें यह बात मान ली जायगी कि बाल बिबाहको रोकनेके सम्बंधमे उन्होंने अपने कर्तव्यकी अवहेलनाकी है।

(७) अदालतको यह अधिकार न होगा कि वह इस कानूनकी धारा ३ के अनुसार, किसी अभियुक्तके जुरमाना न दे सकने पर उसे क़ैदकी सज़ा देसके।

(८) प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट या जिला मैजिस्ट्रेटके अतिरिक्त, अन्य

किसीभी, अदालतको बाल-बिवाह सम्बंधो मुकद्दमों पर बिचार करनेका अधिकार न होगा।

९) इस क़ानूनसे सम्बंध रखने वाले किसीभी मुकद्दमेपर कोई अदालत ऐसी दशामें बिचार नहीं कर सकती, जब कि बिवाह होनेके एक बर्षके भीतरही मुकद्दमा दायर न किया गया हो।

१०) इस क़ानून सम्बंधी किसी मुकद्दमेकी जांच या तो अदालत स्वयं करेगी, या अपने आधीन किसी प्रथम श्रेणीके मैजिस्ट्रेट से करावेगी। इस प्रकारके मुकद्दमोंमें पुलिसको हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार न होगा।

११) (क) मुकद्दमा दायर करने वाले व्यक्तिका बयान लेनेके बाद और अभियुक्तके नाम सम्मन जारी करनेके पहिले, अदालत मुकद्दमा दायर करने वाले व्यक्तिसे १००) रु० का मुचलका, मय ज़मानतके या बिना ज़मानतके इसलिये ले लेगी कि यदि यह प्रमाणित होजाय कि मुकद्दमा केवल अभियुक्तको तङ्ग करनेके अभिप्रायसे दायर किया गया था, तो ऐसो दशामें अदालत अभियोग लगाने वाले व्यक्ति से अभियुक्तको हरज़ाना दिला सके। अदालत द्वारा निश्चित अवधिके भीतर यदि ज़मानत न दाखिलकी जायगी, तो नालिश खारिज करदी जायगी।

(ख) इस धाराके अनुसार लिया हुआ मुचलका फ़ौजदारी क़ानून के अनुसार लिया हुआ मुचलका समझा जायगा।

यह पुस्तक सनातन धर्मानुसारही श्रुति स्मृति पुराण तथा निर्बंधों

की सम्मतिसे लिखी गई है अतएव मुझे पूर्ण आशा एवं विश्वास है कि हठ तथा दुराग्रह छोड़कर सनातन धर्मावलम्बी विद्वान् लोग इसका विचार करके श्रुति स्मृति पुराण सम्मत बाल विवाह नियंत्रक "सारदा विधान" के समर्थनमें परिश्रम करेंगे। क्योंकि कुलकोंसे सनातन धर्मको कलङ्कित करनेके लिये विवाह नहीं बढ़ावेंगे।

इति पञ्चमोऽध्यायः
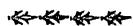
परिशिष्टम्।

कुछ लोग उपलक्षण तृतीया विधानसे ब्रह्मचर्य्य पदको युवानंका विशेषण स्वीकार करके "ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इस वेद मंत्रका कन्या ब्रह्मचर्य्योपलक्षितं युवानं पतिं विन्दते। अर्थात् कन्या ब्रह्मचारी युवा पुरुषसे विवाह करे। यह अनर्थ करते हैं। यह अर्थ श्रुतिस्मृतियोंके विरुद्ध होनेसे माननीय नहीं है। और भी ब्रह्मचर्य्योपदके कर्मका विशेषण होनेसे इसी मंत्रके पूर्वार्धका तथा और भी पूर्वापर मंत्रोंका असंगत एवं असंभव पूर्ण अर्थ हो जायगा। क्योंकि सभी मंत्रोंमें एक ही सूत्रसे हेतुमें तृतीया हुई है। जैसे

"ब्रह्मचर्य्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति॥" १७
अनड्वान् ब्रह्मचर्य्येणाश्वो घासं जिगीषति।
ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥ १८
ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नत। अथर्व० कां० ११ प्र० २४ अनु ३

अर्थात् ब्रह्मचर्य्य और तपोबलसे राजा राज्यकी रक्षा कर सकता है ब्रह्मचर्य्यसे बैल और घोड़ा निर्बल जन्तुओंको जीत सकता है वा घास खा सकता है। ब्रह्मचर्य्यसे कन्या पतिको वरे। ब्रह्मचर्य्य

और तपोबलसे देवताओंने मृत्युको जीत लिया। इन सभी मंत्रोंमें ब्रह्मचर्य्यपद कर्ताके लिये आया है। इन मंत्रोंमें यदि कर्ताके लिये हेतु तृतीया न मानकर ब्रह्मचर्य्यपदमें उपलक्षण तृतीया मानी जाय तो ब्रह्मचर्य्यपद कर्मका विशेषण हो जायगा तो ब्रह्मचारी युवापतिकी तरह ब्रह्मचारी राज्य, ब्रह्मचारी घास, ब्रह्मचारी मृत्यु यह अनर्थ हो जायगा। अतएव जैसे इन सब मंत्रोंमें हेतु तृतीया मानकर कर्ताके लिए ब्रह्मचर्य्यपदका व्यवहार किया गया है। वैसे ही "ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानम्" मंत्रमें भी हेतु तृतीया स्वीकार करके ब्रह्मचर्य्य पद कन्या ही के लिये माना जाता है क्योंकि इस मंत्रमें कन्यापद ही कर्ता है। यहाँ उपलक्षण तृतीया कदापि नहीं हो सकती। इस मंत्रका यही सारांश है कि युवती कन्याका युवा पुरुषके साथ विवाह हो। पुरुषके लिये युवन् शब्द ही पर्य्याप्त है और कन्याके लिये ब्रह्मचर्य्यपद आया है जिससे युवती कन्या अर्थ सिद्ध होता है। जब पशुओंको ब्रह्मचर्य्य कराना वेद सिद्ध है (जैसा कि लोग घोड़ा और बैलको ब्रह्मचर्य्य कराते हैं।) तो कन्याओंको ब्रह्मचर्य्य करनेके लिये वेद क्यों न आज्ञा दे। न मालूम अज्ञानी लोग कन्याओंके ब्रह्मचर्य्यका बिरोध करके क्यों पाप भागी बनते हैं। वीर्य्य शुद्धि तथा वेद पढ़नेके लिये पुरुषको ब्रह्मचर्य्य करना आवश्यक होता है तो रज शुद्धिके लिये स्त्रियोंको भी ब्रह्मचर्य्य करना चाहिये। रज तथा वीर्य्य जब दोनों शुद्ध रहते हैं तभी आरोग्य दीर्घायु बुद्धिमान् संतान पैदा होती है। एककी कमजोरीसे संतान दूषित होती है अतएव स्त्रीको भी ब्रह्मचर्य्य करना वेदानुकूल हुआ। यद्यपि बिना ब्रह्मचर्य्यके भी राजा राज्यकी रक्षा कर सकता है। बिना

ब्रह्मचर्य्यके भी बैल तथा घोड़ा घास खा सकता है और कन्या भी बिना ब्रह्मचर्य्यके विवाह कर सकती है। तथापि इन मंत्रोंमें कर्ताके लिए ब्रह्मचर्य्य पदको हेतु समझके तृतीया की गई है। इससे सिद्ध होता है कि सब मंत्रोंकी तरह इस मंत्रमें भी ब्रह्मचर्य्य पद कर्ता (कन्या ही) के लिये है और बिना ब्रह्मचर्य्यके अबोध बालिका युवा पतिसे विवाह करके कैसे स्वस्थ रह सकती है। अतएव युवा पतिसे विवाह करनेके लिये कन्यायोंका ब्रह्मचर्य्य करना अत्यंत आवश्यक हेतु हुआ। उसीमें तृतीया है। अतएव पूर्वोक्त प्रकरणानुसार सब मंत्रोंकी तरह इस मंत्रका भी यही अर्थ हुआ कि कन्या ब्रह्मचर्य्य करके युवा पतिसे विवाह करे (देखो पृ० २२) ब्रह्मचर्य्यही के प्रभावसे कन्यायें देवियां होसकती हैं और अत्याचारियोंको वे स्वयं कटार, तलवारसे जवाब देकर सतीत्व की रक्षा कर सकती है जैसे लक्ष्मीबाई, पद्मिनी, किरणदेवीने किया था बालिकाओंके विवाहसे उनकी आत्म शक्ति नष्ट होजाती है और निर्बलताके कारणही वे अत्याचारियोंके अत्याचारका शिकार होजाती हैं अतएव कन्याओंको भी ब्रह्मचर्य्य करना अति उपयोगी हुआ।

"त्रिरात्रमक्षार लवणाशिनौ स्यातामधः शयीयाता ँ सम्वत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादश रात्र ँ षड्रात्रं त्रिरात्र मन्ततः"

पारस्कर गृ० २१ सू० ८ कंडिका १ कांड

अर्थात् तीन रात्रि तक क्षार नमक पदार्थ न खाकर नीचे सोते हुए वर वधू एक वर्ष या १२ दिन या ६ दिन या तीन दिन तक मैथुन न करे उसके बाद मैथुन (गर्भाधान) करें याज्ञिक विवाहके कारण यदि स्त्री की अवस्था कम हो या दोनोंमें कोई रोगी हो तो १ वर्ष या

१२ या ६ दिन गर्भाधान (मैथुन) न होना चाहिये । अतएव त्रिरात्र-मन्ततः इस सूत्रका यही अन्तिम सिद्धान्त है कि तीन रात्रि (चतुर्थी कर्म) के बाद अवश्य गर्भाधान होना चाहिये ।

बिना रजस्वला हुई कन्याओंसे गर्भाधान (मैथुन) करनेका निषेध किया गया है । "प्राग्रजोदर्शनात्पत्नींनइयात्"

इति कत्यायनः * ऋतुकालके प्रथम स्त्री के पास न जाना चाहिये । इस सूत्रसे रजस्वला होनेके बाद गर्भाधान (मैथुन) करना प्राप्त हुआ है । और भी रजस्वला होनेके प्रथम मैथुन करनेकी राक्षसो प्रथा का निषेध कई जगह पाया गया है । इससे सिद्ध होता है कि रजस्वला होनेके बाद मैथुन करना चाहिये । विवाहके चौथे या पांचवें दिन पूव सूत्रोक्त मैथुन विधिसे सिद्ध होता है कि रजस्वला होनेके बाद विवाह होना चाहिये जिससे चतुर्थी कर्मके बाद गर्भाधान हो सके । देखो पृष्ठ १३

अध्यात्म रामायण आदि काण्ड ६ अ० २६ में लिखा है कि—

सीतास्वर्णमयीमालां गृहित्वा दक्षिणेकरे ।
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्त व्यंञ्जितस्तनी ३०
रामस्योपरिनिक्षिप्य स्मयमाना मुदंययौ ।

वस्त्रोंसे स्तनको छिपाती हुई मुस्करा कर जानकीजीने श्रीरामचन्द्र जीके गलेमें सुवर्णमयी माला पहना दी । मन्द हासके विलास तथा स्तनोंके छिपानेसे ज्ञात होता है कि विवाहके समयमें जानकीजीकी पूर्ण यौवनावस्था थी ६ वर्षकी कन्यामें ये सब बातें नहीं हो सकती ।

---

* ऋतुकालके पहिले स्त्रीका संग्रह (विवाह) न करना चाहिये ऐसा अर्थ बहुत लोग करते हैं सो उचित भी है ।

देखो पृष्ट १६ सावित्री कथा। "यवीयसी" शब्दका अर्थ है अत्यन्त युवती कन्या "इयमनयोरतिशये न युवती यवीयसी" इसका सारांश यही हुआ कि दोनों कन्याओंमें जो अत्यन्त युवती हो उस कन्याको 'यवीयसी' कहते हैं। 'यवीयसी' शब्दकी यह व्युत्पत्ति पुरुषके साथ नही है। किन्तु कन्याओंके साथ है। अतएव इस व्युत्पत्ति से यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि पुरुष और स्त्री में जिसकी अत्यन्त युवास्था हो उसको 'यवीयसी' कहते हैं। इस लिये पूर्वोक्त व्युत्पत्तिके द्वारा पुरुषसे स्त्री की अवस्था अधिक हो जायगी यह अर्थ निकालना भूल है। हां, "यवीयो वरजानुजः" कोषके अनुसार प्रकृति प्रत्यय विशिष्ठ 'यवीयसी' शब्दके अर्थसे अनुजत्व अर्थ अवश्य निकलता है। उसका दो जगह व्यवहार होता है। एक जगह भाई या बहिनमें अनुज शब्दका प्रयोग होता है। जो पीछे पैदा हो उसे अनुज या छोटा कहते हैं—जैसे मनुजीने लिखा है "ज्येष्ठोयवीयसो भार्य्याम्" अ०-५६ दूसरे अनुज शब्दका प्रयोग दूसरोंके साथ होता है जैसा कि लोकमें लोग कहते हैं—अमुक मनुष्य अमुक मनुष्यका अनुज है अर्थात् छोटा है। यवीयसी शब्दमें इसी दूसरे अनुज शब्द का प्रयोग किया गया है। * अर्थात् जो युवती कन्या पुरुषसे छोटी हो * और अन्य कन्याओंसे बड़ी हो उसको 'यवीयसी' कहते हैं। अनुज शब्दसे युवत्व अशंका परित्याग कभी नहीं हो सकता। पूर्वोक्त

---

* प्रथम अनुज शब्दका व्यवहार यहां नहीं किया गया है क्यों कि यह विवाह प्रकरण है भाई बहिनमें विवाह नहीं होता।

* इस लिये मिताक्षरामें "वयसा प्रमायास्तश्चन्यनाम्" लिखा गया है।

मनु वाक्यसे भी यवीयसी शब्दमें युवत्व अर्थका परित्याग नहीं हुआ है। * जवान छोटे भाईकी स्त्रीसे ज्येष्ठ भाई भोग करे तो पतित हो जाता है यही मनुजीका अभिप्राय है। यदि प्रत्यायार्थ अतिशायत्व अनुजका भी विशेषण समझा जाय, तब भी 'यवीयसी' शब्दसे युवत्व अर्थका त्याग नहीं हो सकता क्योंकि जो अपने भाईसे छोटासे छोटा होता है वही दूसरोंसे बड़ा होनेके कारण युवा भी होता है, इसी तरह यद्यपि स्त्री अपने पतिसे छोटी होती है परन्तु और कन्यामें अधिक युवती होनेसे वही पूर्ण युवती भी होती है। वास्तवमें युवन् शब्दका अर्थ है युवा और इयसन् प्रत्ययका अर्थ है अतिशय यही प्रत्यायार्थ ठहरा। युवन् शब्दके साथ ही प्रत्ययार्थ अतिशयत्वकी प्रधानता रहेगी। अतएव अत्यल्प अवस्थाके लिये यवीयसी शब्दका प्रयोग कहीं भी नहीं किया गया है। न तो किसी व्याकरण तथा कोषसे अत्यल्पावस्थामें यवीयसी शब्दका प्रयोग हो सकता है इस प्रकारसे युवन् शब्दके युवा अर्थ तथा इयसुन् प्रत्ययके अतिशय अर्थ एवं प्रकृति विशिष्टके अनुजत्व अर्थकी संगति लग जायगी और अनर्थ भी नहीं होगा। वस्तुतः अतिशयत्व, युवन् शब्द ही के साथ लग सकता है। अतएव इयमनयोरतिशयेन युवती यवीयसी अर्थात् जो दोनों कन्याओंमें अत्यन्त जवान हो तथा वरसे छोटी हो उस कन्याको यवीयसी कहते हैं।

"लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत" पुरुष अच्छे लक्षणवाली स्त्री से विवाह करे अर्थात् जिस कन्यामें स्त्रियोंके पूर्ण लक्षण आ जाय उससे विवाह

---

* छोटा भाई जवान था तभी उसके स्त्री भी थी। बच्चोंका विवाह मनुजी को इष्ट नहीं था।

करे। इसलिए कन्या शब्दकी जगह स्त्री शब्द पढ़ा गया है यह याज्ञवल्क्योक्त स्त्रीशब्द यवीयसी शब्दके युवती अर्थका और भी परिपोषक है देखो पृष्ठ २१

कुछ लोगोंका मत है कि ६ वर्षके प्रथम एक बार देवभोग हो जाता है। उसके बाद कन्याओंका विवाह हो जानेसे दूसरी बारका देव भोग हो सकता है। सो ठीक नहीं है क्योंकि विवाहके प्रथम ही दोनों बारके देव भोग हो जाने चाहिये विवाह होने पर कोई भी देव भोग नहीं हो सकता। अतएव ऋग्वेदमें लिखा है "उदीर्ष्वातः पतिवतीह्येषा" हे विश्वावसो गन्धर्व अब यह कन्या पतिवती (विवाहिता) हो गई है अतः इसके पाससे उठ जाइये। इससे सिद्ध होता है कि विवाह हो जाने पर कोई भी देव भोग नहीं हो सकता देखो पृ० १७

हाँ अल्पावस्थाकी कन्याका याज्ञिकविवाह एक ही बार देव भोग होने पर होता है इसीलिये यह धर्म संकठ पक्षका विवाह समझा जाता है। अतएव मनुस्मृति तथा महाभारतमें लिखा है "धर्मेसीदतिसत्वरः" विवाहके बिना यदि धर्म नष्ट होता हो तो अल्पावस्थाकी कन्याका विवाह करना चाहिए यदि धार्मिक आपत्ति न हो तो ऐसा विवाह न करना चाहिये। वस्तुतः दो बार देव भोग होने पर ही कन्याओंका विवाह होना युक्त होता है। बिना दो बार देव भोग हुए कन्याओंमें उत्तमता नहीं आती अतएव रजस्वला विवाह ही श्रेष्ठ माना जाता है। ऋतुमती कन्याके न मिलने पर एक बार देव भोग वाली कन्याका विवाह संकठ पक्षमें लिखा गया है सब जगह इसको न करना चाहिए। देखो पृ० ७-१०-१७-१८

इति